स्मृतिफलितसमस्ताभीष्टमुद्यद्दिनेश । प्रतिभटनिजशोभाशान्त विघ्नान्धकारम्
कमपि शिवभवान्योरंकसौभाग्यमन्तः । सुरमणिमवलम्बे चारु लम्बोदराख्यम्

मुझे उद्विग्न मतकरो ! अपने चूहेके साथ खेलनेदो !

अपने गुरुदेवसे प्राणायाम द्वारा षट्चक्रोंके
बेधने तथा कुण्डलिनीके जगाने
की
शिक्षा लेकर ब्रह्मरन्ध्रतक पहुंच
परब्रह्मसे जामिलो !

श्री १०८ स्वामी हंसस्वरूपजी महाराज ।

ॐ

॥ तत्सद्ब्रह्मणे नमः ॥

श्री १०८ स्वामिहंसस्वरूपविरचितं

॥ षट्चक्रनिरूपणचित्रम् ॥

—:०:—

ॐ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोर घोरतरेभ्यः ।
सर्वेभ्यः शर्व सर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः ॥

(तै० आ० प्रपा० १० अ० १६)

यस्मिन्दर्पणविम्बजृम्भितपुरीसंदर्भतुल्यं जगत् ।
भातं यत्परसंविदो यत इदं रूप्यादिवल्लीयते ॥
यस्याज्ञानविजृम्भिता परभिदा वारीन्दुभेदादिवत् ।
तं भूमानमुपास्महे हृदि सदा वामार्धजानिं शिवम् ॥

प्रिय पाठकगण ! उस परब्रह्म जगदीश्वरने जितनी अद्भुत रचना अपने स्थूल बृहद्ब्रह्माण्ड अर्थात् विराट मूर्तिमें की हैं वे सब ठीक २ जैसी की तैसी इस साढे तीन हाथके शरीरमें भी रचदी हैं; अर्थात् भूः भुवः स्वः इत्यादि सप्तलोक ऊपर अतल, वितल, सुतल इत्यादि सप्तलोक नीचे और सूर्य्य, चन्द्र, नक्षत्र, सागर, पर्वत, वृक्ष, नद, इत्यादि जो कुछ इस ब्रह्माण्डमें प्रगट रूपसे देखपडते हैं वे सबके सब इस क्षुद्र ब्रह्माण्ड अर्थात् आपके शरीरमें ज्योंके त्यों स्थित हैं, तात्पर्य्य यह है कि शरीर सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका प्रतिविम्ब है, जैसे एक चित्रकार (Photographer) अपने फोटोके कांच (Lens) होकर मुम्बई सदृश किसी बडे शहर को चार अंगुलके पत्र पर ज्योंका त्यों प्रतिबिम्बितकर चित्रित करडालता है उसी प्रकार सृष्टिकर्तारूप अत्यन्त चतुर चित्रकार (Photographer) ने मायाके कांच होकर पंचभूतके अत्यन्त छोटे पत्र पर अनन्त कोटि योजन विस्तार ब्रह्माण्डको चित्रित कर दिखाया है।

॥ प्रमाण ॥

देहेऽस्मिन् वर्तते मेरुः सप्तद्वीपसमन्वितः । सरितः सागराः शैलाः क्षेत्राणि क्षेत्रपालकाः ॥ १ ॥ ऋषयो मुनयः सर्वे नक्षत्राणि ग्रहास्तथा । पुण्यतीर्थानि पीठानि वर्तन्ते पीठदेवताः ॥ २ ॥ सृष्टिसंहारकर्तारौ भ्रमन्तौ शशि भास्करौ । नभो वायुश्च वह्निश्च जलं पृथ्वी तथैव च ॥ ३ ॥ त्रैलोक्ये यानि भूतानि तानि सर्वाणि देहतः । मेरुं संवेष्ट्य सर्वत्र व्यवहारः प्रवर्तते ॥ ४ ॥ जानाति यः सर्वमिदं स योगी नात्र संशयः । ब्रह्माण्डसंज्ञके देहे यथा देशं व्यवस्थितः ॥ ५ ॥

(शिवसंहितायां द्वितीयः पटलः)

अर्थात् जो प्राणी एवम् प्रकार मेरुदण्ड [Spinal chord] से लिपटे हुए सातों द्वीप, सरित, सागर, शैल, क्षेत्र, क्षेत्रपाल, ऋषि, मुनि, नक्षत्र, ग्रह, पुण्यतीर्थ, सिद्धपीठ, पीठोंके देवता, सृष्टिसंहार करने वाले सूर्य्य,चन्द्र, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, इत्यादि को गुरुद्वारा शिक्षा पाकर पूर्णप्रकारसे इस देहरुपी ब्रह्माण्डमें जानता है वही योगी है इसमें सन्देह नहीं ।

प्रिय पाठकगण ! इतनाही नहीं किंतु उस चित्रकारने इस पंचभौतिक शरीरमें औरभी अनेक प्रकारकी अलौकिक रचनाओंको अपनी अद्भुत सत्ता द्वारा ऐसी चतुराइके साथ गोपनीय रखी है जिनके जाननेके लिये प्राचीन ऋषी महर्षियोंने चिरकाल पर्य्यन्त तपकिया और जब जाना परमानन्दमें मग्न होगये, जैसे " तैत्तिरीयोपनिषद्के तृतीयाध्याय भृगुवल्ली " में लिखा है कि—

भृगुर्वै वारुणिः वरुणं पितरमुपससार अधीहि भगवो ब्रह्मेति ।

अर्थात् एकबार वरुणके पुत्र भृगुने अपने पिताके समीप जाकर प्रार्थना की कि हे पितः! मुझको ब्रह्मका बोध करावो तब " तथंहोवाच । तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व तपो ब्रह्मेति स तपोऽतप्यत स तपस्तप्त्वा " पिताने उत्तर दिया, तपके द्वारा उस ब्रह्म को जान क्योंकि तपही ब्रह्म है तब भृगुने तपस्या की और तप कर नीचे लिखी गुप्त वस्तुओं को इस शरीरमें जाना ।

१. अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात्
२. प्राणो ब्रह्मेति ,,
३. मनो ब्रह्मेति ,,
४. विज्ञानंब्रह्मेति ,,
५. आनन्दो ब्रह्मेति ,,

श्रुतियोंको संक्षिप्तकर दिखलायागया है जिज्ञासुओंको चाहिये कि "तैत्तिरीयोपनिषद्" देखें।

उक्त श्रुतियोंसे स्पष्ट देखपड़ता है कि यह शरीर नाना प्रकारके आश्चर्य्यमय पदार्थोंका भण्डार है जिसमें उस परमात्माने **अन्न, प्राण, मन, विज्ञान, और आनन्द** रूप होकर प्रवेश किया है, अर्थात् इस शरीरमें ये पांच कोष हैं जिनमें एक २ को भली भांति जान कर जिज्ञासु ब्रह्मानन्द लाभ करताहै, अतएव इन पांचोमें से प्रथम**अन्नमयकोष**काभेद इस स्थानमें जनायाजाता है।

प्रिय पाठकगण ! बहुतेरे सन्तोंने भाषामेंभी कहाहैः—

॥ पद ॥

कायागढ़ अजब बनाई सन्तो निरखहु मन ठहराई ॥ सत्तर हाट बहत्तर कोठा चौंसठ यन्त्र लगाई । सो सबई खोजो मेरे भाई जिन यह महल बनाई ॥ कायागढ ० ॥ पांच पवनियांमें एक नागर एके राह चलाई । भाव विना कछु कहत बनत नहिं राखहु मनहिं छिपाई ॥ कायागढ ० ॥ कहत कबीर सुनो भाइ साधो छाड़हु सब चतुराई । दश दरवजवा जब यम घेरे तब कहां जाहु पराई ॥ कायागढ ० ॥

॥ पद ॥

कोइ लोढ़त सन्त सुजान कायाबन फूलिरही ॥ १. एका एक मिले गुरु पूरा मूलमंत्र जो पावे । सकल साधु की बानी बूझे मन प्रतीत बढ़ावे ॥ कोइ लो ० २. ॥ दूका दुइ तजो नर दुविधा रज सत तमगुण त्यागो । सतगुरु मारग ऊर्ध निरखो क्या सोये उठिजागो ॥ कोइलो० ३. ॥ तीया तीन त्रिवेणी संगम जहां अगम स्थाना । ईर्षा तृष्णा मारिके कोई सज्जन कर स्नाना । कोई लो० ॥ ४. चौथे चार चतुरनर सोधे चौथे पदको लागे । चढ़िके प्रेमहिंडोला झूले चितवत मन अनुरागे ॥ कोइ लो० ॥ ५. पांचे पांच पचीसों वश कर सांच हिया ठहरावे । ईड़ा, पिंगला, सुषुमन सोधे ध्रुवमण्डल उठि धावे ॥ कोई लो० ॥ ६. छठवें छवों चक्र धरि बेधे शून्य भवन मनलावो । विकशित कमल हियाको परिचे तब चन्द्रा दरसावे ॥ कोई लो० ॥ ७. सातें सात सहज धुनि उपजे सुनि २ आनन्द बाढे । ऐसो दीन दयाल सांच गुरु बूड़त भवजल काढ़े ॥ कोई लो० ॥ ८ आठे आठ गगनगुंफा में दृष्टि लगावे सोइ । आतमसे परमातम चीन्हे

ताहि तुझे नहिं कोई ॥ कोई लो० ॥ ६ ॥ नउये नवो द्वार होइ निरखो जगे जगामग ज्योती। दामिनि दमकै अमृत बरसे झरे झराझर मोती। कोई लो० ॥ १० ॥ दशे दहाई देह पाइ नर जो पढ एक पहाडा। **धरनीदास** तासुपद वन्दे निशिदिन बारम्बारा ॥ कोई लो० ॥

इस प्रकार सन्तोंकी अनेक बानी इस **कायागढके** विषय हैं विस्तार भयसे नहींलिखा अब जानना चाहिये कि इस गढ (Fort) के पांच शहरपनाह अर्थात् तट सात तहखाने अर्थात् तलघर, साढे तीन लक्ष कोठरियां और सात मंजिले अर्थात् महल हैं, जिसके सातवें महल पर वह बादशाहोंका बादशाह अर्थात् महाराजाधिराज परब्रह्म ज्योतिस्वरुप निवास कररहा है, जिस प्रकार किसी गढके उस मकान पर जिसमें स्वयं महाराज बैठता है एक झंडी लगादी जाती है उसी प्रकार इस शरीररूपी गढमें भी जहां वह ब्रह्म गुप्तरूपसे निवास करता है शिखा रुपी झंडी लगादी गई है, अर्थात् शिखा ब्रह्मरन्ध्रके स्थानको जनाती है इसी कारण सनातनधर्मके आचार्य्योंने शिखा रखवाकर गायत्री मंत्रसे सन्ध्याके समय शिखाबन्धन की प्रणाली निकालदी है * ।

अब उक्त पांचो तट सातों तलघर इत्यादि की व्याख्या कीजाती है और उनका मुख्य तात्पर्य्य दिखलाया जाता है।

पांच शहरपनाह [तट] =१. आकाश, २. वायु, ३. अग्नि, ४. जल, ५. पृथ्वी, प्रमाण श्रुति– **ॐआकाद्वायुः वायोरग्निः अग्नेरापः अद्भ्यः पृथ्वी ।**

सात तखाने [तरघर]=१. रोम, २. चर्म, ३. रुधिर, ४. मांस, ५. हड्डी, ६. मज्जा, ७. धातु, प्रमाण श्रीमद्भागवत– **सप्तत्वगष्टविटपोनवाक्षः ।**

साढे तीनलक्ष कोठरियां =साढे तीनलक्ष नाड़ियां जो इस शरीरमें हैं ।

प्रमाण शिवसंहिता—सार्धत्रयलक्षनाड्यः सन्ति देहान्तरे नृणाम् । प्रधानभूता नाड्यस्तु तासु मुख्याश्चतुर्दश ॥ १ ॥ सुषुम्णोडापिंगला च

---

* शिखाबन्धनसे केवल केश बांधलेना नहीं तात्पर्य्य है किन्तु अपने चित्तवृत्तिको सन्ध्याके समय ब्रह्मरन्ध्रके समीप ब्रह्मके ध्यानमें बांधरखना शिखाबन्धन है इसीकारण बहुतेरे आचार्य्योंने केवल स्पर्श करलेनेकी आज्ञादी है ।

गान्धारी हस्ति जिह्विका । कुहू सरस्वती पूषा शंखिनी च पयस्विनी ॥२॥ वारुणालम्बुषा चैव विश्वोदरी यशस्विनी । तासु तिस्रस्तु मुख्याः स्युः पिंगलेड़ा सुषुम्णिका ॥३॥ तिसृष्वेका सुषुम्णैव मुख्या सा योगिवल्लभा । अन्यास्तदाश्रयं कृत्वा नाड्यः सन्ति हि देहिनाम् ॥ ४ ॥ नाड्यस्ता अधोवदनाः पद्मतन्तुनिभाः स्थिताः । पृष्ठवंशं समाश्रित्य सोम सूर्य्याग्नि-रूपिणी ॥ ५ ॥ तासां मध्ये गता नाड़ी चित्रा सा मम वल्लभा । ब्रह्मरन्ध्रं च तत्रैव सूक्ष्मात् सूक्ष्मतरं शुभम् ॥ ६ ॥

भाषा टीका--अर्थात् शिवजी कहते हैं कि इस शरीरमें साढे तीन लक्ष प्रधान नाड़ियां हैं जिनमें १४ मुख्य हैं ॥१॥ सुषुम्णा, ईडा, पिंगला, गान्धारी, हस्तिजिह्वा, कुहू, सरस्वती, पूषा, शंखिनी, पयस्विनी, वारुणा, अलम्बुषा, विश्वोदरी यशस्विनी, इन चौदहोंमें प्रथमकी तीन नाड़ियां पिंगला, ईडा, सुषुम्णा, मुख्य हैं ॥३॥ तिनमें भी सुषुम्णा मुख्य है जो योगियोंकी अत्यन्त प्यारी है जिसके आश्रयसे और सब नाड़ियां देहमें स्थित हैं॥४॥ सो सुषुम्णा अधोमुखी कमलनालके सूतसी पतली 'पृष्ठवंश' अर्थात् 'मेरुदण्ड' (Spinal chord) के मध्य स्थित चन्द्र, सूर्य्य, अग्नि, करके अधिष्ठिता है ॥५॥ शिवजी कहते हैं कि इसीसुषुम्णाके मध्य मेरी प्यारी नाडी चित्रिणी है जो अत्यन्त सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म ब्रह्मरन्ध्रको चलीगई है ॥ ६ ॥

सातमहल [मंजिले] =सातों पद्म १. पहिले महलके चार द्वार हैं अर्थात् चतुर्दलपद्म (आधार चक्र), २. दूसरे महलके ६ द्वार हैं अर्थात् षट्दलपद्म (मणीपूरक चक्र) ३. तीसरे महलके दश द्वार हैं अर्थात् दशदलपद्म (स्वाधिष्ठान चक्र), ४. चौथे महलके द्वादश द्वार हैं, अर्थात् द्वादशदलपद्म (अनाहत चक्र), ५. पांचवे महलके षोडश द्वार हैं अर्थात् षोडशदलपद्म (विशुद्धाख्य चक्र), ६. छठवें महलमें दो छोटी २ खिरकियां लगी हैं अर्थात् द्विदलपद्म (आज्ञा चक्र) इन्हीं खिरकियोंकी सन्धि स्थान पर अर्थात् त्रिकुटीमहल पर एक इतराख्य लिंग नाम करके टेलिस्कोप (Telescope) लगाहुआ है जिससे होकर दृष्टि उलटा कर देखनेसे एक हजार द्वारी अर्थात् सहस्रदलपद्म देखपड़ता है जिसकी कर्णिकामें यह बृह्मरूपी हीरा कोटि सूर्य्यके समान चमाचम चमकरहा है ७. सातवें महल

के हजार दरवाजे अर्थात् द्वार हैं जिसको **सहस्त्रदलपद्म** (शून्यचक्र) कहते हैं ।

प्रिय पाठकगण ! प्राणायाम करनेवालोंको तो उक्त नाडीयों और चक्रोंका भेद गुरुद्वारा अवश्यही जानलेना चाहिये क्योंकि इनके विना जाने प्राणायाम सिद्ध नहीं होसकता । जिस प्राणायामको इस समय लोग अज्ञानताके कारण अत्यन्त कठोर और भयंकर समझते हैं वह इनके भेद जानलेनेसे ऐसा सुलभ होजाता है जैसे सुख पूर्वक निद्रालेनी इस कारण इनका पूर्ण भेद जनानेके लिये इस ग्रन्थमें चक्रोंका ध्यान चित्र द्वारा स्पष्ट किया जाता है ।

ज्ञात होवे कि प्राणायाम दो प्रकारका है, " अगर्भ और सगर्भ " जिसका वर्णन श्री १०८ स्वामि हंसस्वरूपकृत वृहत्संध्याके प्राणायामविधिमें कियाहुआ है, देखलेना इनदोनों प्राणायामोंमें पूरक, कुंभक, रेचक, अवश्यही कियेजाते हैं, अर्थात् श्वासको चढ़ाना, रोकना, उतारना अति आवश्यक है किंतु इनदिनों बाल्यवस्था [बचपन] हीम ब्रह्मचर्यके नष्ट होजानेसे वीर्य्यकी निर्बलता और नाड़ियोंमें कफ वायु इत्यादि की मलिनताके कारण प्राणियोंको श्वास चढ़ाने उतारनेमें बलनहीं मिलता जिस कारण प्राणवायु अपने शुद्धमार्गको नहींपाता फिर बेचारे साधक थोडेदिनोंके अभ्यासके पश्चात् थकथका कर क्रियाछोड़देते हैं, और प्राणायमसे हाथधोकर प्रारब्ध २ पुकारने लगते हैं, इसकारण इनविचारे थकेहुये साधकोंको फिर साहसदिलाकर प्राणायाममें प्रवृत्त करानेकेलिये प्राणायामका अत्यन्त सुलभ भेद जिसको **मानसप्राणायाम** कहतेहैं बतलाया जाता है, इसक्रियामें विना श्वासके चढ़ाये उतारे केवल मनहीद्वारा चक्रोंका ध्यानकरते हुये चढ़ना उतरना पड़ता है जो साधक द्वादश वर्ष पर्य्यन्त यम * नियमके साथ केवल **मानसप्राणायामका** नित्य अभ्यास करे उसकी क्रिया सिद्ध होजावे ।

मानसप्राणायामके समय चतुर्दलपद्मसे सहस्रदलपद्म पर्य्यन्त किस मन्त्रसे किस दलमें क्या ध्यान करना चाहिये इस **षट्चक्रनिरूपणचित्र**में वर्णन कियाजाता है ।

शंका— इस समय प्रायः बहुतेरे नवशिक्षित युवक (New enlightened young) यह कह पड़ते हैं कि इस देहमें चक्र इत्यादि कहां हैं यदि हैं तो डाक्टरोंको क्यों नहीं देखपडते; हंसीआती है इनकी बुद्धिपर जो बिन समझे " मान न मान मैं तेरा महमान" बनजाते हैं, इसमें सन्देह नहीं कि ये बडे विद्वान और बुद्धिमान हैं किन्तु बुद्धि कैसीभी विशाल क्यों नहो जिस विषयकी ओर लगाई जाती है उसीके समझनेमें प्रवीण होती है इतर विषयमें नहीं. जैसे किसी अत्यन्त चतुर बैरिस्टर (Barrister-at-Law) की बुद्धि किसी रोगीको निरोग करदेनेमें कुछभीकाम न करसकती और एक विशाल बुद्धिवाला डाक्टर वा सर्जन अर्थात् चिकित्सा शास्त्रमें प्रवीण जजसाहबके इजलासपर किसी अभियोग [मुकद्दमा] में कुछभी बोलनेकी शक्ति नहींरखता, इसी भांति

* यम नियमका विधिपूर्वक वर्णन " श्री स्वामि हंसस्वरूप कृत प्राणायामविधि" में कियाहुआ है।

इनदिनों नवशिक्षितोंकी बुद्धि जो गणित (Arithmetic), बीजगणित (Algebra), खगणित (Geometry), भूगोल (Geography) इत्यादिमें तो अतिही प्रवीण है धार्मिक विषय (Religious subjec) में विना कुछकाल परिश्रमकिये कुछ समझनेको समर्थनहीं होसकती, इसकारण इनकी शंकाके निवारणार्थ इन सातों पद्मोंका अंगरेजीनाम जिनको डाक्टरलोग अपनी चिकित्साशास्त्र [Anatomy] द्वारा भली भांति जानते हैं इस स्थानमें देखलाकर, उनकेदल, दलोंके अक्षर, उनके तत्त्व, तत्त्वोंके बीज, बीजोंके वाहन, दलोंकेरंग उनके यंत्र, उनके देव, देवोंकी शक्तियां , उनके ध्यानके फल इत्यादि क्या हैं और इनके तात्पर्य्य क्या हैं इस स्थानमें वर्णन कियेजाते हैं ।

डाक्टरी पुस्तकोंसे अर्थात् अनैटोमी [Anatomy] से पद्मोंके नाम ये हैं—१. चतुर्दलपद्म = Pelvic Plexus २. षट्दलपद्म = *Hypogastric Plexus* ३. दशदलपद्म = Eqigastric Plexus = ४. द्वादशदलपद्म = Cardiac Plexus ५. षोड़शदलपद्म = Carotid Plexus ६. द्विदलपद्म = Medulla oblongata ७. सहस्रदलपद्म = Brain इसग्रन्थके चित्रोंके मस्तकपरभी ये नाम दियेहुये हैं और उनका स्थानभी दियाहुआ है देखलेना ।

पद्मोंके दल = दलोंसे तात्पर्य्य यह नहीं है कि शरीरमें कमलकी पत्तियां फैलीहुई हैं किन्तु दलोंका अर्थ गुच्छ है, जैसे वृक्षोंमें पांच सात फलोंके एकत्र होनेसे एकगुच्छ बनता है वैसेही इस शरीरके जिन जिन स्थानोंमें जितनी ओरसे नाड़ियोंके गुच्छ फूट फूटकर निकले हैं उतनेही उसके दल कहेगये, जैसेचतुर्दलपद्मके चारदलोंका तात्पर्य्य यह है कि इस स्थानमें नाड़ियां चार ओरसे गुच्छ बनाकर निकल गई हैं, इसीकारण अंगरेजीमें इनको Plexus कहते हैं, ऐसेही और दलोंकोभी जानना ।

दलोंकेअक्षर = ऐसानहीं कि **अ, आ, इ, ई, क, ख, ग, घ,** इत्यादि इन दलोंपर खोदकर लिखेहुये हैं किन्तु अभिप्राय यह है कि बोलनेके समय वायुके धक्के लगनेसे जिसगुच्छसे जौन अक्षर बाहर निकलता है वही उस दलका अक्षर है । इसी कारण 'अ' से 'ह' तक पचासों अक्षर षट्चक्रके पचासों दलोंपर देखलाये गये हैं । **सहस्रदलकी** बीस बीस पत्तियां एकही अक्षरकी देनेवाली हैं जैसे किसी यन्त्रालय (Press) के एक एक डिब्बे [Case] में एक प्रकारके अनेक अक्षर (Type) रहते हैं जहां एकही शब्दमें एकही अक्षर दो बार आये तो उन्हीं डिब्बोंसे लेकर जोडे जाते हैं उसी प्रकार बोलनेके समयभी जहां एकही शब्दमें एकही अक्षर दो चार एक संग आये तो मस्तिष्ककी पत्तियां उनको पूर्ण करदेती हैं जैसे कका, चचा, बचा, डब्बू, ककक़, इत्यादि

पद्मोंके तत्त्व= चतुर्दलमें पृथ्वीतत्त्व, षट्दलमें जल, दशदलमें अग्नि, द्वादशदलमें वायु, षोडशदलमें आकाश, येपांचोंतत्व जो पांचों दलोंमें कहेगये हैं इनका अभिप्राय यह है कि जैसे रेलवे यंत्र अर्थात् एनजिन (Engine) में कहीं आगजलरही है, कहीं पानीगरमहोरहा, कहीं वाष्प (Steam) तयार होरहा, कहीं वायु दम देरहा, जिनके मेलसे रेलगाडी आगे बढ़नेको समर्थ होती है, उसी प्रकार अन्न जलके भोजनके पश्चात् इस शरीरमें ये पांचों तत्त्व इन्ही पांचों स्थानोंमें तयार होते हैं जिनसे शरीर पुष्ट होकर सर्व व्यवहार करनेको समर्थ होता है। द्विदलमें* महत्तत्व अर्थात् सब तत्त्वोंके प्रगट होनेका स्थान है और **सहस्रदल** तत्वातीत अर्थात् परब्रह्म का स्थान है।

तत्त्वोंके बीज= पृथ्वीका [लँ] जलका [वँ] अग्निका (रँ) वायुका (यँ) आकाशका (हँ) जो पद्मोंकी कर्णिकामें बीजके अक्षर हैं उनसे यह नहीं समझनाचाहिये कि लिखेहुये हैं किन्तु इनका तात्पर्य्य यह है कि जैसे रेलगाडी अथवा धुआंकश [Steamer] के यन्त्रमें कहीं आग धक धक, वायु फक फक, जल सूं सूं, वाष्प कूं कूं शब्द भररहा है उसी प्रकार इन कमलोंमें भी जिस तत्वके तयार होनेमें वायुके धक्के लगनेसे जहांजैसा शब्द होकर तत्त्व तयार होरहा है वही उस तत्त्वका बीज अर्थात् उत्पन्न करनेका कारण अथवा सत्ता [Power] कहाजाता है, चतुर्दलमें **लँ लँ लँ लँ लँ** शब्द होनेसे पृथिवी तत्त्व-तयार होरहा है, तात्पर्य यह है कि इस अन्नमय कोष स्थूल शरीरमें जो कुछ अन्न डालिये उसमेंसे पृथिवीका अंश यहांही खींच जाता है और इसी स्थानमें पृथिवी तत्त्व तयार होकर सारांश सर्वांगमें फैलजाता है औ उसका अधिकांश अर्थात् मल भाग इसी स्थानमें एकत्र हो गुदामार्गसे बाहर आता है इस स्थानमें वायु **लँ लँ लँ लँ लँ** ऐसा शब्द दिनरात निरन्तर कररहा हैं जिससे ये सब कार्य्य पृथिवीके होते हैं, ऐसेही षट्दलमें अर्थात् पेड़ू पर वायु **वँ वँ वँ वँ वँ** शब्द करताहुवा जलके कार्य को कररहा है अर्थात् जोंकुछ जल ग्रहण कीजिये उसका सारांश सर्वांग शरीरमें फैलजाता है और मल भाग पेशाब (मूत्र) होकर इसी स्थानसे लिंगमार्ग द्वारा बाहर आता है प्रगट है कि मूत्र नहीं उतरने से पेड़ू फूलता है। ऐसेही वायु **रँ रँ रँ रँ रँ** शब्द करताहुआ नाभी स्थानके दशदलमें अग्नि तत्त्वको प्रगट करता है जिससे अन्नादि सब भस्म होते हैं, फिर द्वादशदलमें वायु **यँ यँ यँ यँ यँ** शब्द करताहुआ कलेजे पर वायु तत्त्वको प्रगट करता है, स्पष्ट है कि जब डकार

---

* द्विदल औ सहस्रदल भेद गुरुद्वारा जानना चाहिये।

आती है इसी दलके स्थानसे आती है, इसी प्रकार वायु हँ हँ हँ हँ हँ शब्द करता हुआ आकाश मार्गको गलेके स्थानमें खोलता है, जिस होर प्राण संचार करता है, प्रगट है; कि सम्पूर्ण शरीरकी कलाई, कत्त, इत्यादि खण्डोंमें कहीं भी किसी बडे मोटे रस्सेसे कसिये प्राण-वायुकी कुछ भी हानि नहीं होती, किन्तु गलेके स्थानमें पतली डोरीसे हौले भी फांसिये तो आकाश रुन्ध होजानेसे प्राण घुट कर मृत्यु वश होने लगता है। **द्विदल** अर्थात् भ्रूमध्यमें ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ प्रणव बीज उच्चारण हो रहा है जो महत्तत्त्व स्थान है, अर्थात् सब तत्त्व जहां से प्रगट होकर फिर उसीमें लय होजाते हैं और जहां ज्योतिही ज्योति करोडों सूर्य्य समान दमकती हुई देखपड़ती है। **सहस्त्रदल**में विसर्ग (:) बीज है जिससे सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न होता है। यह गोपनीय रहस्य है, साधकको गुरुमुख द्वारा यह भेद जानकर कुछ दिन मानस **प्राणायाम**के अभ्यासके पश्चात् आपसे आप बोध होजाता है, कि विसर्गसे कैसे जगत् उत्पन्न है।

बीजोंके वाहन = (लँ) बीजका वाहन ऐरावत हस्ती; (वँ) का मकर; (रँ) का मेष [मेंढा; (यँ) सा मृग; (हँ)का फिर हस्ती है। इसका यह तात्पर्य्य नहीं है, कि शरीरके भीतर ये सब पशु बैठे हैं, किन्तु इनका मुख्य अभिप्राय यह है, कि इन भिन्न २स्थानोंमें वायु जिस तत्वके साथ मिलकर जिस पशुकी चालके समान चलता है वही उस बीजका वाहन है, जैसे **चतुर्दल**में वायु पृथ्वी तत्वके साथ मिलकर धीमें २ हस्तीकी चाल के समान चलता है, इस कारण हस्ती वाहन कहाजाता है; प्रगट है, कि पृथ्वी और आकाश दोनों तत्त्व अन्य तत्त्वोंसे स्थिर हैं इस कारण हस्ती दोनोंका वाहन है। ऐसेही **षट्दल**में वायु जल तत्त्वके साथ मिल मकरकी चालके समान गुडकता चलता है, प्रगट है, कि सरिता, सागर और ताल इत्यादिमें जलकी लहराती हुई चाल मकरके समान है। **दशदल**में अग्नि तत्त्वके साथ मिल वायु मेंढाके समान चलता है, हांडीमें दाल पकते हुए देखलीजिये। **द्वादशदल**में वायु, वायु तत्त्वके साथ मिल मृगाके समान छलांग भरता हुआ चलता है, प्रगट है, कि जब डकार आती है वायु कलेजेसे मृगाके समान छलांग मार मुंहसे बाहर आता है। **षोडशदल**में वायु आकाशतत्त्व के साथ मिल धीरे २ हस्ती समान चलता है। **द्विदल**में ॐकार तत्वके कारण केवल नाद ही नाद होरहा है, अतएव नादही अर्थात **अनाहतध्वनि** वाहन है जिसकी चाल अद्वैत है। किसी पशु पक्षीसे उपमा नहीं दी जासकती। **सहस्रदल**में विसर्ग तत्त्वका वाहन विन्दु [·] है

जिसकी चालही नहीं वरु जितनी चाल हैं सब इसीसे निकल चल फिर इसीमें लय होजाती हैं, अतएव अनिर्वचनीय है जिसका आनन्द योगीजन जानते हैं।

दलोंके रंग= चतुर्दल रक्तवर्ण, **षड्दल=** गुलाबी सिंदूरवर्ण, **दशदल=** नीलवर्ण, **द्वादशदल=** लालवर्ण, **षोड़शदल=**धूम्रवर्ण है। इनका यह अर्थ नहीं है, कि ये सब भिन्न २ रँगोंसे रँगेहुये हैं, किन्तु इनका अभिप्राय यह है, कि रुधिरके अरुण रंगपर भिन्न २ तत्वोंका प्रतिबिम्ब पड़नेसे जैसा रुधिर जिस स्थानमें देखपड़ता है तदाकार उन दलों (Plexus) का रंग कहा गया है, जैसे **चतुर्दल**में रुधिरपर पृथ्वी तत्वका विम्ब पड़नेसे रक्त चन्दनके समान कुछ मटेला लाल, (रुधिरमें मिट्टी मिलादीजिये रक्त हो जावेगा) **षड्दल**में रुधिरपर जलका बिम्ब पड़नेसे गुलाबी सिंदूर वर्ण, [रुधिरमें जल मिला दीजिये गुलाबी होजावेगा] इसी प्रकार **दशदल**में अग्नि तत्वके कारण रुधिरका नील वर्ण, (रुधिरको आगपर चढ़ाइये नीला होजावेगा)। **द्वादशदल**में वायुके कारण रुधिर अत्यन्त गंभीर लाल (रुधिरको शुद्ध वायुमें छोड़िये लाल देख पड़ेगा) **षोड़शदल**में आकाशके कारण धुमैला [रुधिरको घन आकाशमें देखिये धुमैला देख पड़ेगा [जैसे सूर्य्यकी किरणें प्रातःकाल (सवेरे) अरुणोदयके पूर्व और पश्चात् आकाशमें मिलनेसे धुमैली देखपड़ती हैं।

द्विदलमें ज्योति है इसकारण रुधिरपर ज्योतिका विम्ब पड़नेसे श्वेत रंग, और **सहस्रदल**में शून्य तत्वके कारण रुधिरपर शुभ्र स्फटिकके समान देख पड़ता है।

पद्मोंके यन्त्र = चतुर्दलका चतुरस्र [चौकोन], **षड्दल**का अर्द्धचन्द्राकार, **दशदल**का त्रिकोण, **द्वादशदल**का षट्कोण, **षोडशदल**का वर्तुलाकार [गोल] **द्विदल**का लिंगाकार [लम्बा] और **सहस्रदल**का पूर्ण चन्द्र निराकार। इनका यह अर्थ नहीं है, कि लोहेकी अथवा जस्तेकी कमानीके सदृश कुछ चौकोन, गोल वा लम्बा, शरीरके भीतर कोई कल लगाहुआ है, किंतु मुख्य अभिप्राय यह है, कि जैसे रेलगाड़ी अथवा धुआंकश [Steamer के [Engine]में भिन्न २ यन्त्र, भिन्न आकार से चक्कर खातेहुये कोई गोल, कोई त्रिकोण स्वरूपको बनारहा है, कोई ऊपरसे नीचे और नीचेसे ऊपर निकल पैठरहा, कोई मस्तानेके समान दायें वायें हिलरहा, कोई चें, कोई पें, कोई कूं, और कोई सूं शब्द करता हुआ कहीं अग्निको धौंक २ कर बढ़ारहा है, कहीं जलको गरम कररहा, कहीं वाष्प [Steam]बना रहा है

जैसे आपने धुआंकशके कन्ट (Cunt) को देखाहोगा, कि घूम २ कर गोलाकार स्वरूप वनाता हुआ दोनों ओरके पहियोंको चलारहा है और जुड़ी (Judy) ऊपरसे नीचे और नीचेसे ऊपर निकल पैठ कर वाष्पको आगे बढ़नेकी शक्ति देरहा है। इसी प्रकार इस शरीरमें भिन्न २ नाड़ियां वायुकी सहायतासे भिन्न प्रकार चक्कर खाकर जिस २ आकारसे भिन्न २ तत्त्वोंको वनाती हुई शरीरको उठने, वैठने, चलने, फिरनेकी शक्ति देरही हैं, वे ही उन स्थानोंके यन्त्र हैं।

पद्मोंके देव और देवी= ब्रह्मके जिस विशेष अंश और कलासे इन पद्मोंके अन्तर्गत शरीरके भिन्न २ कार्य होरहे हैं वही उसका देव और उस अंशमें जो कार्य्य करनेवाली शक्ति है वही उसकी देवी कहीगयी है। साधकोंको ध्यान द्वारा चित्तवृत्ति ठहराकर वृत्तिके साथ २ वायुको धीरे २ मूलाधारसे प्रत्येक पद्म होते हुये ऊपर सहस्रदल तक लेजानेके निमित्त अपनी २ उपासना और मतके अनुसार देव और देवियोंका ध्यान करना चाहिये, किन्तु पूर्वके योगियोंने योगतन्त्रानुसार जिस पद्ममें जिस देव और देवीका ध्यान किया है, उसी मार्गसे चलना श्रेष्ट जानकर **(महाजनो येन गतः स पन्थाः)** इस ग्रन्थमें उन्हीं देव और देवियोंकी साकार मूर्तियां ध्यान निमित्त चित्रित कीगयी हैं।

सहस्रदलमें तो विशेषकर गायत्री-मन्त्र पढ़तेहुए अपने २ इष्टदेवहीका ध्यान, साकारहो वा निराकार, करना चाहिये, जैसा कि सहस्रदलकी व्याख्यामें आगे वर्णन कियागया है।

पद्मोंका ध्यानफल= भिन्न २ चक्रोंके ध्यान करनेसे भिन्न २ फलहोते हैं, अर्थात् ध्यान करनेवाला विशाल वुद्धिमान् उत्तमवक्ता, श्रेष्ठकवि, शान्तचित्त, सर्वेहितकारी, आनन्दस्वरूप, विद्वान्, काम क्रोध आदि विकार रहित, आरोग्य और चिरंजीव होजाता है, इसका कारण यह है, कि मनुष्यके मस्तिष्कमें भिन्न २ शक्तियां हैं, जो **कपालशास्त्रवेत्ता** अर्थात् मस्तिष्कविद्या जननेवाले भलीभांति जानते हैं। हमारे भारतसे तो इस समय यह विद्या जो **सामुद्रिक**का एक अंग है, जिसको अंगरेज़ीमें (Phrenology) कहते हैं, एकदम लोपही होगयी है। कहीं किसी कोनेमें दोएक पुरुष जानने वालेभी हैं तो वे किसीको नहीं वतलाते, किन्तु स० १७०० सदीके अन्तमें जरमनी (Germany) के रहनेवाले **डाक्टर गौल** (Dr. Gall) * ने इसी देशकी पुस्तकोंको ढूंड २ कर यह विद्या

* Near the close of the last century the physiology of the brain became the subject of special investigation by an eminent physician

अंग्रेजीमें भलीभांति फैलायी है। जिसको अंग्रेजी जाननेवाले विद्वान् देखकर अच्छीप्रकार समझ सकतेहैं, कि मनुष्यके मस्तिष्कमें सात खण्ड हैं, जिनमें मुख्य २ सात शक्तियां हैं। (देखो पृष्ठ **क मस्तिष्क चित्र** नं० १ ×), इन्हींको **सप्तशक्ति** कहते हैं और इन्हीं सातोंको सातों पद्मोंसे सम्बन्ध है। फिर इन सातों शक्तियोंमें एक २ के अन्तर्गत कई भिन्न २ सत्तायें हैं, जो गिनतीमें ५० हैं, किन्तु इन पचासों सत्ताओंमें केवल ४२ सत्तायें **कपालशास्त्र** द्वारा आजतक प्रगट हुई हैं। (देखो पृष्ठ **क मस्तिष्कचित्र** नं० २ †) आठ सत्तायें और गुप्त हैं, जो योगियोंको केवल योग विद्याही द्वारा जाननेमें आती हैं, और इन्हीं आठों सत्ताओंसे अष्ट-सिद्धियां केवल योगीजनोंको लाभहोती हैं। इन आठों सत्ताओंका भेद गुरुमुख द्वारा जाना जाता है। क्योंकि यह विद्या हृदयसे हृदयमें चली आरही है, अक्षरों द्वारा प्रगट करना कठिन है। अब यहभी जानना चाहिये, कि मस्तिष्कके उक्त भिन्न२ शक्तियोंको षट् चक्रोंके साथ नाड़ियोंके द्वारा तारबरकी (Telegraph) **दूरस्थवाच्यबोधक लौहयन्त्र** के समान लगाव (संयोग) है। जैसे किसी एक स्थानके तारमें चोट देनेसे हज़ारों कोसकी दूरीपर उसकी बात झट दम मारते पहुंचजाती है, उसी प्रकार ध्यानद्वारा किसी चक्र पर मन और वायुका बल पड़नेसे वह बल एकदम मस्तिष्कके उस भागपर पहुंचजाता है जिससे उस चक्रको सम्बन्ध है, फिर जैसे किसी बन्द पुष्पके मुख अर्थात् कलीपर वायुकी फूंक लगनेसे वह पुष्प खिलजाता है, उसी प्रकार ये शक्तियां जो पुष्पकी कली समान बन्द रहती हैं, चक्रोंके ध्यान द्वारा मन और वायुकी चोटलगनेसे खिलकर बढ़ने लगती हैं। इसी कारण भिन्न २ चक्रोंके ध्यानसे भिन्न २ शक्तियां वृद्धि पाकर पूर्वोक्त फलोंको प्रगट करतीहैं। किस चक्रके ध्यानसे क्याफल होता है? चक्रोंकी व्याख्यामें विधिपूर्वक वर्णन कियागया है ॥ इति ॥

शंका—इन चक्रोंमें जो **दल**, उनके **रंग**, उनके **अक्षर**, **तत्त्व**, **तत्त्ववीज**, उनके **वाहन**, उनके **देव** और **देवियों** केतात्पर्य्य पूर्वमें कथन कियेगये हैं, उनसे प्रगट होता है,

of Germany, Dr. Gall, and he claimed that he had discovered signs of character in the brain, that it can be safely studied as the basis of character and that whatevhr the face or attitudes of motions may reveal, the impulse comes from the brain. His mode of investigation has acquired the name of Phrenology.

× इसकी व्याख्या पृष्ठ ६ में है देखलेना।

† इसकी व्याख्या ,, ६, ७, ८; में है देखलेना।

कि ये सब नाड़ियोंके गुच्छ, रुधिरके रंग, वायुके संग भिन्न २ तत्त्वोंके मेलसे नाड़ियोंकी चाल और तत्त्वोंकी भिन्न २ शक्तियां हैं, फिर इनकी साकार मूर्ति बनाकर ध्यान करनेकी आवश्यकता क्यों ? ॥

उत्तर—सर्व प्रकारकी सूक्ष्म विद्यायें जिनको केवल अन्तःकरणसे सम्बन्ध है, विना साकार मूर्तिके बनाये साधकोंको नहीं बताई जासकतीं, अतएव साधकोंके हितार्थ उनकी मूर्ति बनानेकी अत्यंतही आवश्यकताहै। जैसे अक्षर, अंक, विन्दु, रेखा, राग, सुर, तान और आत्मविद्या इत्यादि, जो सूक्ष्म हैं मूर्तिद्वारा साधकोंको सुलभ रीतिसे बताई जासकती हैं। भलीभांति विचारकर देखिये, कि **अ, आ, क, ख, ग,** इत्यादि जो केवल ध्वनिमात्र हैं मुखसे उच्चारण होते हैं, इनका कहीं भी कोई स्वरूप नहीं, किन्तु भिन्न २ देशके विद्वानोंने परस्पर लिखने पढ़ने और शिक्षा देनेके निमित्त इन अक्षरोंकी साकार मूर्तियां अपनी २ रुचि अनुसार बनाली हैं। यदि ये मूर्तियां न होतीं तो हम लोग एक दूसरेके मनकी बात दूरस्थ होकर कदापि नहीं जान सकते, यह साकार मूर्तिहीकी महिमा है, कि हजारों लाखों कोसों दूर बैठेहुए एक दो अंगुलके पत्रपर इन अक्षरोंकी मूर्तियां बना डाक वा तार द्वारा झट अपने मनकी बात प्रगट करदीजिये। फिर इनहीं मूर्तियों (अक्षरों) के प्रभावसे बड़े २ वकील, मुखतार, जज और कलक्टर, हजारों रुपये उपार्जनकर सुखी होरहे हैं। फिर **रेखागणित** (Geometry) की ओर थोड़ी दृष्टि दीजिये, कि जिस विद्याके जाननेसे मनुष्य बहुत बड़ा बुद्धिमान् होकर नाना प्रकारके यन्त्रों अर्थात् कलोंको बना अद्भुत कार्य्योंको कर दिखलाता है, जिस विद्या द्वारा नानाप्रकारके मकान, सड़क, नहर, कूप, वावलीकी रचनामें और क्षेत्रोंके मापनेमें अत्यंत प्रवीण होजाता है, वह विद्या केवल सूक्ष्म विन्दुपर निर्भर है, जो निराकार है। अंग्रेजी पढ़नेवालेभी पढ़ाकरते हैं, कि A point is that which has no part and has no magnitude. अर्थात् विन्दु वह है जिसका खण्ड नहीं होसकता और उसका कुछ प्रमाण नहीं, किन्तु स्कूलोंमें जाकर देखिये, कि शिक्षक (मास्टर साहब) ने हाथमें एक खल्ली मिट्टीका खण्ड [Chalk] ले पाट (बोर्ड) के समीप जा एक बन्दूककी गोली समान विन्दुबना बोल उठे कि BoysLet it be granted that A [.] is a given point अर्थात् विद्यार्थियो ! मानलो अर्थात् स्वीकार करलो कि अ (.) यह एक कल्पित विन्दुहै। अब देखिये कि यथार्थ विन्दुका बनाना असंभव जानकर शिक्षकको विन्दुकी कल्पित साकार मूर्ति बनाकर साधकोंको बतानी पड़ी। ऐसेही रागरागिनी, सुरताल इत्यादिके सिखानेके निमित्त साकार रेखाओं द्वारा अनेक पुस्तकें बनी हैं, जिनको देखकर यन्त्र बजानेवाले और सुरतानके अलापनेवाले गानविद्यामें अतिही प्रवीण हो जाते हैं। एवम् प्रकार औरभी अंक १, २ इत्यादि विद्याओंको जानना। विस्तारके भयसे नहीं

लिखा। इसीप्रकार योगियोंने योगविद्या साधन निमित्त सकल सूक्ष्म शक्तियोंकी साकार मूर्तियां वनाली हैं, जिनके ध्यान मात्रसे चित्तवृत्ति निरोध हो समाधि लाभ होजाती है और वर्णमालाके सदृश इनहीं साकार मूर्तियोंके द्वारा एक योगी दूसरेसे परस्पर हजारोंकोस दूर बैठेहुए वार्ता करलेता है।

फिर दूसरीबात यह है, कि जितनी वस्तु आपके सन्मुख रखीहुई हैं, वे सब आदिमें निराकार रहती हैं, मध्यमें साकार हो कार्य्य साधनकर फिर निराकार होजाती हैं। जैसे सलाई अथवा चकमक पत्थरकी आग जो पूर्वमें निराकार रूप रहती है, फिर मध्यमें प्रगट हो काष्ठोंके संयोगसे पाक इत्यादि कार्य्योंको साधन कर अन्तमें निराकारहोजाती है। ऐसेही अन्न,जल, वस्त्र, फल फूल इत्यादिको भी जानना। अब जानना चाहिये, कि ऊपर कथन की हुई वस्तुओंके अनुसारही योगी लोग भी शरीरस्थित सूक्ष्मतत्वोंकी अभ्यास कालमात्र साकार ध्यानकर चित्तवृत्तिको एकाग्र करते हैं। जब वृत्तिकी एकाग्रता लाभकर ब्रह्मरन्ध्रमें प्रवेश करजाते हैं, तब वे शान्तचित्त,त्रिलोकदर्शी और आत्मज्ञानी हो जन्म मरणके वन्धनसे छूट अपने २ इष्टमें लीन होजाते हैं और ये शक्तियां अपने २ स्थानमें निराकार रूपहो सुस्थिर होजाती हैं।

अब इस स्थानमें साधकोंके वोध निमित्त **कपालशास्त्र**का संक्षिप्त वर्णन किया जाता है, जिसके पढ़नेसे दृढ़ निश्चय होजायगा, कि मस्तिष्कमें भिन्न २ शक्तियोंका निवास है, जो चक्रोंके ध्यान करनेसे बढ़ती हैं, और एक जन्मकी बढ़ीहुई शक्ति दूसरे जन्ममें संस्कार होकर उच्च गतिको देती है, इसीकारण योगक्रिया करनेवाला पुरुष " **शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोभिजायते** " इस गीताके श्लोकानुसार पूर्व संस्कारानुकूल उच्चगतिको पाताहुआ कई जन्मोंके पश्चात् मुक्त होजाता है।

" **पृष्ठ कके अंक नं० १** " वाले चित्रमें मुख्य **सप्तशक्तियां** जो अंकितकर दिखाई गई हैं, उनके नाम ये हैं— **१. आश्रमिका** (Domestic Propensities) नाड़ियोंद्वारा इसको **द्वादशदलपद्म**से सम्वन्ध है। **२. स्वसंरक्षणी** (Selfish propensities) इसको **दशदलपद्म**से सम्वन्ध है। **३. स्वोत्कर्षणी** Selfish sentiments) इसको **षट्दलपद्म**से सम्वन्ध है। **४. सत्प्रवर्तनी** (Moral Sentiments इसको **सहस्रदल पद्म**से सम्वन्ध है। **५. मनः प्रवर्तिका** (Semi-intellectual Sentiments) इसको **चतुर्दलपद्म**से सम्वन्ध है, । फिरछठवीं शक्ति

बुद्धिप्रवर्तिका (Intellectual Sentiments) है, जिसके दोभाग हैं ।
६. विषयग्राहिणी (Perceptiveness) इसको द्विदलपद्मसे सम्बन्ध है ।
७. विवेचनी (Reason) इसको षोड़शदलपद्मसे सम्बन्ध है ॥

अब उक्त सातों शक्तियोंमें एक एकके अन्तर्गत बहुतेरी भिन्न २ सत्तायें हैं , जो सब मिलकर ५० हैं, किन्तु इनमें आठ गुप्तरूपसे निवास करती हैं और केवल योगीजनोंको काम देती हैं। पर ४२ सत्तायें कपालशास्त्र द्वारा प्रगट कीगयी हैं, जिनसे सर्व साधारण मनुष्य और पशुपक्षियोंके कार्य्य सिद्ध होते हैं। इन ४२ सत्ताओंके स्थान (पृष्ठ क के चित्र नं० २) में अंकित कर देखलाये हुए हैं, इनहींमें जिस अंकवाला स्थान कुछ ऊंचा अथवा लम्बा चौड़ा और पुष्ट, किसी प्राणीके मस्तकमें, देखा जावे तो जानलेना चाहिये, कि वह सत्ता उसमें अधिक होगी॥

अब उन अंकित स्थानोंकी सत्ताओंके नाम उनके कार्य्य सहित वर्णन कियेजाते हैं।

१. आश्रमिकाशक्ति=(Domestic Propensities) इसके अन्तर्गत ६. सत्तायें हैं——१. स्नेहसत्ता (Amativeness) जिस प्राणीके गर्दनसे ऊपरवाला भाग कुछ ऊंचा और उठा हुआ पुष्ट होगा, उसमें यह सत्ता अधिक होगी, इस कारण वह स्नेही होगा। [क.] सम्मिलनसत्ता (Conjugality) इस सत्तावाले प्राणीको स्त्री पुरुषमें अधिक मेल होगा, जैसे 'नल, दमयन्ती', 'अज, इन्दुमती'। पशु पक्षियोंमें भी जिनमें यह सत्ता अधिक है, उनके जोड़ेमें मेल होता है, जैसे व्याघ्र, कपोत इत्यादि। २. पितृप्रेमसत्ता (Paternal Love) इस सत्तावालेको अपने बाल बच्चोंसे अधिक स्नेह होता है। ३. मैत्री-सत्ता (Friendship orAdhesiveness) इस सत्तावालेको भाइयों, बहनों, पड़ोसियों, संगियों और सखाओंमें अधिक मेल होता है। ४. निवासानुरागसत्ता (Inhabitiveness) इस सत्तावालेको घरसे अधिक स्नेहहोता है। ५. अपरिच्छेदसत्ता (Continuity) इस सत्तावाला प्राणी अपने इष्ट कार्य्यमें सतत ऐसा लग जाता है, कि किसी दूसरी ओरकी सुधि एकदम नहीं रखता, सब काममें तत्पर होजाता है, जीलगाकर करता है ।

२. स्वसंरक्षणीशक्ति = (Selfish Propensities) इसके अन्तर्गत ६. सत्तायें हैं—१। [ख] प्राणस्नेहसत्ता (Vitativeness) इस सत्तावाले को अपने प्राणकी रक्षामें बड़ी सावधानता रहती है। पशु, पक्षियोंमें व्याघ्र, बिल्ली, शेन आदिमें

यह सत्ता अधिक होती है। २। ६. शौर्य्यसत्ता (Combativeness) इस सत्तावालेके कानका ऊपर भाग ऊंचा और पुष्ट होगा और शत्रुओंसे झट सामना करबैठेगा, जैसे पशुओंमें कुत्ता, जो-व्याघ्र पर भी दौड़जाता है। ३। ७. संहारसत्ता (Destructiveness) इस सत्तावालेके मस्तकका पिछला भाग कानसे कान तक अधिक चौड़ा होगा। मांसाहारी पशु पक्षियोंमें यह अधिक होती है, जैसे व्याघ्र, कुत्ते, भेड़िये इत्यादि, पर घासाहारियोंमें कम जैसे घोड़े, ऊंट इत्यादि। ४। ८. पोषणसत्ता (Alimentiveness) इस सत्ता-वालेको भोजनमें अतिशय श्रद्धा होती है और अतिथिसत्कार अर्थात् पाहुनोंको भोजन इत्यादि बड़ी श्रद्धासे कराता है। ५। ९. उपार्जनसत्ता [Acquisitiveness] इस सत्तावालेको भविष्य कालके सुख निमित्त द्रव्य, अन्न, विद्या इत्यादिके उपार्जन करनेकी बड़ी श्रद्धा रहती है। कीटोंमें पिपीलिका (चींटी) में यह सत्ता विशेष है। ६। १०. गोपनसत्ता (Secretiveness) इस सत्तावाला अकेला रहना अधिक स्वीकार करता है और अपने मनकी बातोंको दूसरे पर प्रगट करना नहीं चाहता।

३. स्वोत्कर्षणी शक्ति = [Selfish Sentiments] इस शक्तिके अन्तर्गत चार सत्तायें हैं। १। ११. सावधानतासत्ता (Cautiousness) इस सत्तावाले सब कार्य बड़ी चतुराईसे करते हैं, विशेष शत्रुओंसे जान बचानेमें बड़े सावधान रहते हैं। २। १२. सम्मानसत्ता (Approbativeness) इससत्तावालेको सदा ऐसे कार्य करनेकी अभिलाषा रहती है जिससे सर्वसाधारण मान करें। ३। १३. आत्मश्लाघासत्ता [Self Esteem] इस सत्तावालेको अपनी प्रशंसा और अपनी पदवीके आदर करानेकी बड़ी अभिलाषा रहती है ४। १४ दाढ्र्यसत्ता [Firmness] इस सत्तावालेको अपने कार्यकी पूर्तिमें घबराहट नहीं होती, बड़े धीरजसे कार्य्य को पूरा करही छोड़ता है।

४. सत्प्रवर्तिकाशक्ति = [Moral Sentiments] इसके अन्तर्गत ५ पांच सत्तायें हैं। १। १५ अन्तःकरणशुद्धिसत्ता (Concientiousness) इस सत्ता वाला पुरुष सब काम विना पक्षपातके ठीक२करता है, सचाई की ओर दृढ़ रहता है और सदा सत्य बोलनेकी चेष्टा करता है। २। १६. एषणा वा आशासत्ता (Hope) इस सत्तावाला प्राणी

प्राणी आगे आनेवाले किसी समयमें अपनी अभिलाषाकी पूर्ति होनेकी आशासे सर्वकार्य्योंके करने में अत्यन्त तत्पर रहता है। ३। १७. **आत्मज्ञानसत्ता** (Sprituality) इस सत्ता वाले और भक्तिसत्ता (Veneration) वालेके मस्तकका मध्यभाग ऊंचा और उठाहुआ होता है और सदा आत्मा, परमात्मा, देव, देवी, प्रेत, पितर, गंधर्व इत्यादि योनियोंमें विश्वास रखता है। ४। १८. **भक्तिसत्ता** (Veneration) इस स० वालेकी चांदी अवश्य ऊंची होगी, ईश्वर पूजामें और दूसरोंके आदरभाव, सत्कार करनेमें प्रवीण होगा। ५। १९. **उपकृति-सत्ता** (Benevolence) इस स० वाला प्राणी उदार दयालु, सर्व हितकारी होता है और सर्व साधारणके उपकारमें तत्पर रहता है।

मनःप्रवर्त्तिकाशक्ति = (Semi Intellectual Sentiments) इसके अन्तर्गत पांच ५ सत्तायें हैं। १। २० **रचनासत्ता** [Constructiveness] इस स० वाला प्राणी भूषण, यन्त्र, शाल, दुशाले, महल, अटारी, टेब्ल, कुरसी, हल, मूशल, ओखल, थाली, लोटे, ग्लास इत्यादि पात्र, जो मनुष्योंके आवश्यकीय पदार्थ हैं, बनानेमें प्रवीण होता है। जिसमें यह स० अधिक होगी वह उत्तम चित्रकार औ शिल्पविद्यामें प्रवीण होगा। २। २१ **सुप्रतीकग्रहणसत्ता** (Ideality) इस स० वाला सृष्टिके सब पदार्थोंकी शोभा औ सौन्दर्यताको देखकर हर्षित होता है और सब वस्तुओंको अलंकार युक्त रखनेकी चेष्टा करता है। ३। ग. **काव्यसत्ता** (Sublimity) स्पष्ट है। ४। २२ **अनुवर्तनसत्ता** (Imitation) इस स० वालेको दूसरोंके आचरण व्यवहार इत्यादिके अनुकरण करनेकी श्रद्धा अधिक होती है, जैसे बच्चोंको मा बापका अनुकरण और आजकलके नवशिक्षितोंको कोट, पैन्टलून, सिगरेट आदि साहब लोगोंका अनुकरण। ५। २३. **प्रमोदसत्ता** (Mirthfulness) इस स० वालेके कपालका वाम औ दक्षिणभाग जहां पर अंकति कर देखायागया है ऊंचा होता है और वह सदा आनन्दचित्त रहता है।

अब जानना चाहिये, कि **बुद्धिप्रवर्तिका** (Intellectual Sentiments) शक्तिके दोभाग हैं—**विषयग्राहिणी** (Perceptiveness) औ **विवेचनी** (Reason)॥

६. **विषयग्राहिणीशक्ति** = (Perceptiveness) इसके अन्तर्गत द्वादश सत्तायें हैं। १। २४. **अविभक्तता स०** (Individuality) यह स०

नासिकाके मूलसे थोड़ा ऊपर है। इस सत्ता वालेको सृष्टिकी सब वस्तुओंकी स्थितिमात्रका बोध होता है, जैसे बच्चे सब वस्तुओंको अपने समीप घसीट २ कर देखने लगते हैं, पर वे क्याहैं औ उनसे हानि लाभ क्या है यह नहीं जानते। २। २५. **रूपग्रहण स०** (Form) इस स० वालेके नेत्र विशाल और आगेको निकले हुये रहते हैं और दोनों नेत्रों में अधिक अन्तर रहता है। रूप ग्रहण करनेकी विचित्र शक्ति होती है, एकबार जिस रूपको देखलेता है, चिरकाल तक स्मरण रखता है। चित्र बनाने, सुन्दर अक्षर लिखने, बिना यंत्रके गोल, त्रिकोण, चतुरस्र इत्यादि क्षेत्रोंके बनानेमें प्रवीण होता है। ३। २६. **प्रमाणग्रहण-स०** (Size) इस सत्तावालेको वस्तुओंकी छोटाई, बड़ाई, ऊंचाई, निचाईके भेद जानने में बड़ी प्रवीणता होती है। अश्व, गऊ इत्यादिके क्रय विक्रयके समय लोग उनको अवश्य लेजाते हैं। ४। २७. **गुरुताग्रहण स०** (Weigt) यह शक्ति भ्रमध्यमें है, इस स० वालेको घोड़े इत्यादिके सरकश, नटबाजी, बाजीगरी, अर्थात् मस्तकपर घट रख एक पतली रसुलीपर पृथ्वीसे ऊपर चलना और एक दूसरेके कन्धे पर खड़े हो पृथ्वीकी आकर्षणके प्रमाण पर ध्यान रखना इत्यादि कामोंमें प्रवीणता होगी। इस स० वालेके लेखकी पंक्ति सीधी होगी, ऊपर नीचे नहीं होगी। ५। २८. **वर्णग्रहण** (Colour) इस स० वालेकी भउंहें कमानके सदृश अधिक बांकी होगी। स०वालेको रंगोंके बनाने और चित्रोंको उत्तम वर्णसे सुशोभित करनेमें बड़ी प्रवीणता होगी। ६। २९. **व्यवस्थाग्रहण स०** [order] इस सत्तावाला सर्वप्रकार की व्यवस्था करनेमें प्रवीण होगा और गृहके भिन्न२ वस्तुओंको उचित स्थानोंमें संजाकर रखेगा। ७। ३०. **अंकग्रहण स०** [Calculation] स० वान अंकविद्यामें अर्थात् गणित में प्रवीण होगा, जैसे जिराकालवर्ण [Zerah colbürn] जो इस स० में ऐसा प्रवीण था, कि जब वह ६ वर्षका था तब एकबार उससे प्रश्न किया गया कि, १८११ वर्षोंमें कितने दिन और घंटे होते हैं? उसने २० सिकेण्डमें उत्तर दिया, कि ६६१०१५दिन और १५८६-४३६० घंटे। फिर प्रश्न किया गया, कि ११ वर्षोंमें कितने सिकेण्ड होते हैं? उसने चार सिकण्डमें उत्तर दिया कि ३४६८९६००० सिकेण्ड। ८। ३१. **स्थानग्रहण स०** (Locality) स० वानको भिन्न २ नगरों और ग्रामोंके ठीक२ स्थान स्मरण रखनेमें, कि कौन स्थान किस ओर कितनी दूर है? प्रवीणताहोगी। भूगोल [Geography] जाननेमें चतुर होगा। किसी २ पशु पक्षियोंमें भी यह स० अधिक होती है जैसे कुत्ता। सुनाजाता है, कि एक कुत्ता रूससे लौटकर अपने घर फ्रांसमें [France] चलाआया। पक्षी आकाशमें चारों

और उड़कर सन्ध्या समय फिर अपने घोंसलेमें लौटआते हैं ॥ मधुमक्षिका [मधुमक्खी] भिन्न फूलोंसे रस लेकर फिर उसी मार्गसे लौटआती हैं,इस कारण उनका मार्ग **मधुमक्षिका मार्ग** प्रसिद्ध है। इस स० वाले गेंद [Ball]और विलियार्ड (Billiard) खेलनेमें और निशाना लगाने में प्रवीण होते हैं, जिसमें यह स० कम होती है वह प्रायः शहरोंका मार्ग इत्यादि भूलजाता है । ६ । ३२. **वृत्तान्तग्रहणसत्ता** (Eventuality)इस सत्ता वालेको इतिहास पुराणके वार्त्ताओंकी स्मृति बहुत रहेगी और इतिहासविद्या (History) में प्रवीण होगा, और कहानियोंके सुननेमें बड़ी रुचि रक्खेगा । १० । ३३. **कालग्रहणसत्ता** (Time) इस सत्तावालेको समयकी स्मृति बहुत रहेगी,अमुक कार्य्य किस साल ? किस मास ? किस दिनमें किस समय हुवा था ? ठीक २ स्मरण रक्खेगा और ठीक समय पर काम करेगा ॥ ऐसे पुरुषकी रेलगाड़ी अथवा स्टीमर (Steamer) जहाज कभी नहीं हाथसे छूटती । ११ । ३४. **रागग्रहणसत्ता** (Tune) इस स० वालेको गाने बजानेमें प्रवीणता होगी । १२ । ३५. **वाग्व्यापारसत्ता** (Language) इस स० वाला उत्तम वक्ता और अनेक प्रकारके भाषाओंका जाननेवाला होगा ।

७. **विवेचनीशक्ति** = [Reason] इसके अन्तर्गत चार सत्तायें हैं । १ । ३६ **न्यायसत्ता** [Causality] इस स० वालेके ललाटका अग्रभाग विशाल औ ऊंचा होगा॥ स० वान विशाल बुद्धिमान, न्यायशास्त्र [Science] मेंप्रवीण होगा और ब्रह्म, सृष्टिका आदि-कारण है, सिद्धान्त करेगा॥ चित्त वृत्तियोंके निरोधकी भी शक्ति इसमें विशेष रहेगी ॥ जिसमें यह सत्ता अत्यन्त तीव्र होती है, वह नवीन विद्याओंका निकालनेवाला होताहै, जैसे**कपिल**ने सांख्य, **व्यास**ने वेदान्त और **भास्कराचार्य्य**ने पृथ्वीका आकर्षण निकाला । इसी आकर्षणविद्याको **सरस्येकन्यूतन** [Sir Isaac Newton] ईरूप* अथवा ईयरूप [Europe] देशके रहने वालेने निकाला । २ । ३७. **उपमानसत्ता** [Comparison] इस स० वालेके ललाट का मध्य भाग अधिक ऊंचा और उठाहुआ होगा, उत्प्रेक्षा इत्यादि अलंकार युक्त वचन बोलने, उपमान उपमेय इत्यादिके द्वारा सुन्दर काव्योंको सुशोभित करनेमें और गद्य पद्यमें बृहस्पतिके

---

* ई: कहिये लक्ष्मीको अथवा कामदेवको और " ईय" कहिये फैलजानेवालेको॥ इसी लक्ष्मी औ सुन्दरताईके कारण ईरूप औ सर्व देशमें फैलजानेके कारण ईयरूप (Europe)कहते हैं.

तुल्य पूर्वीण होगा, दो समान वस्तुओं के स्वल्पमात्र भेदको भी निकालदेनेमें चतुर होगा, अपनी वक्तृतामें अलंकार युक्त वाक्योंके द्वारा हजारों लाखों मनुष्योंके चित्तको अपनी ओर खींच लेनेमें समर्थ होगा। ३। ३८. **मनुष्यत्वसत्ता** [Human Nature] इस स० वालेको लोगोंसे मिलने जुलने, मेल मिलापके साथ आदर भाव करने और अभ्यागतोंका विधि-पूर्वक सत्कार औ पहुनाई करनेकी बहुत ही श्रद्धा होगी ४। ३९. **मृदुलता** वा **नम्रतासत्ता** [Agreeableness, Suavity] इस स० वालेका स्वभाव ऐसा कोमल होता है, कि सब छोटे बडे प्रशंसा करते हैं, और ऐसा पुरुष दीनता युक्त अहंकार विहीन रहता है॥ इति॥

४२ सत्ताओंका वर्णन होचुका। शेष ८ गुप्त सत्तायें जो **सत्प्रवर्तनीशक्ति**के अन्तर्गत सहस्रदलपद्मकी कर्णिकामें गुप्तरूपसे हैं, वे ये हैं—

अणिमा लघिमा प्राप्तिः प्राकाम्यं महिमा तथा।
इशित्वं च वशित्वं च तथा कामावसायिता॥

इन शक्तियोंकी वृद्धि योग द्वारा केवल योगियोंहीको होती हैं॥

॥ इति ॥

अथ नाड़ीवर्णनम् ।

—:*:()*:—
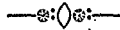
मेरोर्वाह्यप्रदेशे शशिमिहिरशिरे सव्यदक्षेनिषण्णे ।
मध्ये नाड़ी सुषुम्णा त्रितयगुणमयी चन्द्रसूर्य्याग्निरूपा ॥
धुस्तूरस्मेरपुष्पग्रथिततमवपुः स्कन्धमध्याच्छिरस्था ।
वज्राख्या मेढ्रदेशाच्छिरसिपरिगता मध्यमेऽस्या ज्वलन्ती ॥ १ ॥
तन्मध्ये चित्रिणी सा प्रणवविलसिता योगिनां योगगम्या ।
लूतातन्तूपमेया सकलसरसिजान् मेरुमध्यान्तरस्थान् ॥
भित्वा देदिप्यते तद्ग्रथनरचनया शुद्धबुद्धिप्रबोधा।
तस्यान्तर्ब्रह्मनाडी हरमुखकुहरादादिदेवान्तरस्था ॥ २ ॥
विद्युन्मालाविलासा मुनिमनसिलसत्तन्तुरूपा सुसूक्ष्मा ।
शुद्धज्ञानप्रबोधा सकलसुखमयी शुद्धबोधस्वभावा ॥
ब्रह्मद्वारं तदास्ये प्रविलसति सुधाधारगम्यप्रदेशम् ।
ग्रन्थिस्थानं तदेतत् वदनमिति सुषुम्णाख्यनाड्या लपन्ति ॥ ३ ॥

भाष्यम्—मेरोरिति = मेरोर्मेरुदण्डस्य वाह्यप्रदेशे वहिर्भागे सव्यदक्षे वामदक्षिणपार्श्वे शशिमिहिरशिरे शशिशिरा ईड़ा मिहिरशिरा पिंगला इति द्वे नाड्ये निषण्णे स्थिते, अर्थात् ईड़ा वामभागे पिंगला दक्षिणभागे च वर्तेते इत्यभिप्रायः । मध्येनाडी सुषुम्णा मेरोर्मध्यभागे सुषुम्णा नाम्नी नाड़ी शिरा आस्ते । कीदृशी त्रितयगुणमयी रजस्तमस्सत्वगुणस्वरूपा अथवा त्रिगुणितरज्जूस्वरूपा । पुनः कीदृशी चन्द्रसूर्य्याग्निरूपा चन्द्रश्च सूर्य्यश्च अग्निश्च ते चन्द्रसूर्य्याग्नयः तेषांरूपमिव रूपं यस्यास्तादृशी । अतीवप्रकाशमानेत्यर्थः । पुनः कीदृशी धुस्तूरेति धुस्तूरस्य यत् स्मेरपुष्पं प्रस्फुटितकुसुमं तद्वत् प्रथिततम अतिशयेन प्रसृतं वपुः तनुर्यस्यास्तादृशी । प्रफुल्लधुस्तूरपुष्पाकारेत्यर्थः । पुनः कीदृशी स्कंधम-

ध्यात् स्कन्धयोर्मध्यदेशमभिव्याप्य (ल्यब् लोपेति) अत्र "कर्मणि पंचमी" शिरःस्था शीर्षस्था शिरःस्थसहस्रदलपद्मान्तर्गतेत्यर्थः। अस्याः सुषुम्णाया मध्यमे मध्यदेशे ज्वलन्ती दीप्तिकुर्वती वज्राख्या वज्रा नाम्नी नाडी, अस्ति इति शेषः। वज्राख्या कीदृशी मेढ्रदेशात् लिंगदेशात् शिरसि मस्तके परिगता प्राप्ता। मेंढ्रदेशमारभ्य शीर्षपर्य्यन्तं व्याप्तेत्यर्थः॥

मेरुदण्डस्य वामभागे चन्द्राधिष्ठिता ईडानाम्नी नाडी दक्षिणभागे सूर्य्याधिष्ठिता पिंगलाभिधाना मध्ये च चन्द्रसूर्य्याग्न्यधिष्ठिता सुषुम्णानामिकेति नाड्यः सन्ति। वज्राख्या नाडी तु तस्याः सुषुम्णाया मध्य प्रदेशे मेढ्रदेशमारभ्य शिरः पर्य्यन्तं परिगतास्तीति भावार्थः॥

(स्रग्धरावृत्तम्। तल्लक्षणं वृत्तरत्नाकरे। म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम्)॥ १॥

तन्मध्यइति—तस्या वज्राख्याया नाड्या मध्ये सा प्रसिद्धा चित्रिणी नाम्नी नाडी सकलसरसिजान् मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञाख्येति षट्पद्मानि भित्त्वा छित्वा देदीप्यते अतिशयेन प्रज्वलति। सरसिजान् कीदृशान्? मेरुमध्यान्तरस्थान् पृष्ठवंशमध्यावकाशस्थितान्। चित्रिणी कीदृशी? प्रणवविलसिता प्रणवः ॐकारः तेन विलसिता शोभिता युक्तेत्यर्थः। पुनः की०, योगिनां योगगम्या योगाभ्यासरतानां ध्यानेन गम्या ज्ञेया। पुनः कीदृशी? लूतातन्तूपमेया मर्कटकसूत्रवत् सूक्ष्मा। तस्यान्तः तस्याश्चित्रिण्या अन्तर्मध्ये ब्रह्मनाडी, अस्ति इति शेषः। कीदृशी? तद्ग्रथनरचनया तेषां षट्पद्मानां ग्रन्थिविधानेन शुद्धबुद्धिप्रबोधा शुद्धा निर्म्मला या बुद्धिस्तस्या प्रबोधः प्रबोधकारिणी, मूलाधारादिषट्पद्मग्रन्थनेन साधकानां स्वच्छमतिं जनयित्रीतिभावः। पुनः कीदृशी? हरमुखकुहरात् हरस्य स्वयम्भूर्लिंगस्य मुखकुहरात् मुखरन्ध्रात् आदिदेवान्तरस्था आदिदेवः महादेवः तस्य अन्तरे समीपे तिष्ठति या तादृशी। स्वयम्भूर्लिंगमुखमारभ्य सहस्रदलपद्मकर्णिकान्तर्गतपरमशिवसमीपस्थेत्यर्थ। मेरोरन्तर्गतसकलसरसिजान् भित्वा तद्रन्ध्रगतायाः प्रदीप्यमानायास्तस्याश्चित्रिण्या मध्ये स्वयम्भूलिंगमुखरन्ध्रा दारभ्य सहस्रदलान्तर्गतपरमशिवसमीपस्था ब्रह्मनाडी संतिष्ठित इतिभावार्थः (स्रग्धरा वृत्तम्)॥ २॥

विद्युन्मालेति— पुनः कीदृशी? **विद्युन्मालाविलासा** विद्युन्माला विद्युतत्समूहस्तद्वत् विलासो दीप्तिर्यस्यास्तादृशी। पुनः कीदृशी? **मुनिमनसि** मननशीलानां मनसि चित्ते **लसत्तन्तुरूपा** लसत् भासमानं तन्तुवत् सूत्रवद्रूपमाकृतिर्यस्यास्तादृशी। पुनः कीदृशी? **सुसूक्ष्मा** अतिशयसूक्ष्मा क्षीणा वा। पुनः कीदृशी? **शुद्धज्ञानप्रबोधा** शुद्धज्ञानस्य तत्त्वज्ञानस्य प्रबोधः प्रकाशो यस्यास्तादृशी। पुनः कीदृशी? **सकलसुखमयी** समस्त सुखस्वरूपा। पुनः कीदृशी? **शुद्धबोधस्वभावा** शुद्धबोधो निर्म्मलज्ञानमयः स्वभावो यस्यास्तादृशी। **तदास्ये** तस्या ब्रह्मनाड्या आस्येमुखे **ग्रन्थिस्थानम्** संधिस्थानम्, पद्मानामितिशेषः। **प्रविलसति** प्रकर्षेण शोभते वर्तत इत्यर्थः। कीदृशं **ब्रह्मद्वारं** ब्रह्मा सृष्टिकर्त्ता द्वारे यस्य तत्। पुनः कीदृशं? **सुधाधाररम्यप्रदेशम्** सुधाधारेण अमृतसंपातेन रम्यप्रदेशं मनोरमस्थानम्। **तत्** प्रस्तुत मेतत् ग्रन्थिस्थानं **सुषुम्णाख्यनाड्या** सुषुम्णायाः शिराया **वदनमिति** मुखमिति **लपन्ति** कथयन्ति, योगिन इति शेषः।

विद्युच्छ्रेणिप्रकाशाया अतिसूक्ष्मरूपायास्तस्या ब्रह्मनाड्या वदने ब्रह्मद्वारं पद्मानां ग्रन्थिस्थानं विलसति, तदेव योगिनः सुषुम्णावदनमित्यालपन्तीति भावार्थः। (स्रग्धरावृत्तम्) ॥ ३ ॥

भाषाटीका— **मेरुदण्ड**के बाहरकी ओर वाम और दक्षिण भागमें चन्द्र और सूर्य्यसे अधिष्ठिता दो नाडियां **ईडा** और **पिंगला** नाम करके वर्तमान है, अर्थात् **ईडा मेरुदण्ड**की बायीं ओरसे और **पिंगला** दाहिनी ओरसे लिपटी हुई है। (देखो चित्र नं० ६) फिर इसी **मेरुदण्ड**के मध्यमें **सुषुम्णा**नामकी नाडी है जो रज, सत, तम, तीनों गुणोंसे युक्त है, अथवा तीनगुणके सूत वा रज्जू ऐसीलिपटीहुइ चन्द्र, सूर्य्य, अग्नि करके अधिष्ठिता अर्थात् अत्यन्त प्रकाशमाना है। यह **सुषुम्णा** धतूरके पुष्प ऐसी खिली हुइ मूलद्वारसे निकल कर दोनों कंधोंके मध्य होती हुई मस्तकमें सहस्रदलतक चली गयी है। इसी **सुषुम्णा** नाडीके मध्य में एक दूसरी नाडी **वज्रा** नामकी लिंग देशसे निकल मस्तक तक चमकती हुई लग रही है ॥ १ ॥ पूर्वोक्त **वज्रा** नामकी नाडीके मध्य, प्रणव अर्थात् ॐकारयुक्त मकरेकेसूत ऐसी पतली, योगा

भ्यासद्वारा योगीयोंहीको विदित होने वाली **चित्रिणी** नामकी एक तीसरी नाडी मेरुदण्ड मध्यस्थित षट्चक्रोंको वेधतीहुई प्रकाशमान होरही है, इस **चित्रिणी** नाडीके मध्य एक और चौथीनाडी **ब्रह्मनाडी** नाम करके प्रसिद्ध षट्पद्मोंको मालाके समान पिरोती हुई और साधकोंको शुद्ध ज्ञान देती हुई **स्वयम्भूलिंग**के छिद्रसे निकल **सहस्रदल पद्म**की कर्णिकामें स्थित आदिदेव अर्थात् **परमशिव**के समीप चली गई है ॥२ ॥

यह **ब्रह्मनाडी** बिजलीकी माला ऐसी चमकीली मुनियोंके हृदयस्थ ब्रह्मसद्ब ऐसी प्रकाशमान अत्यन्त पतली शुद्ध ज्ञानकी देनेवाली संपूर्ण सुखसे भरीहुई है । इसी ब्रह्मनाडी के मुखमें **ब्रह्मद्वार** है जो मूलाधारकी कर्णिकाके बीचमें लगी हुई है, जिसमुख होकर मस्तककी ओरसे अमृत टपकरकर गिरता है, इसकारण यह स्थान अति रमणीय है । इसी ब्रह्मद्वारको पद्मोंका **ग्रन्थिस्थान** कहते हैं, और **सुषुम्णा**का मुखभी योगीलोग इसीको बतलाते हैं,॥३ (**सुषुम्णा,वज्रा, चित्रिणी,ब्रह्मनाड़ी**, इनचारोंका चित्र प्रत्येक पद्मोंके चित्रके ऊपर है देखलेना) ।

विदित होवे, कि साढेतीनलाख नाडियोंमें ७२०००और ७२००० मेंभी ३६ फिर उनमें १० उनमें भी तीन **इंडा, पिंगला, सुषुम्णा,** मुख्य हैं, जो प्राणियोंके जीवनके कारण हैं । क्योंकि इस शरीरकी आयु प्राणही है । श्रुतिका वचन है, कि **प्राणं देवा अनु- प्राणन्ति मनुष्याःपशवश्च ये, प्राणो हि भूतानामायुः०"** तैतिरीयोपनिषत् ।

अर्थात् देवता भी प्राणही द्वारा जीवित हैं। जितने मनुष्य या पशु हैं सब प्राण ही करके जीवित हैं। इसकारण भूतों अर्थात् जीवमात्रकी आयु प्राणही है। सो प्राण **इंडा, पिंगला, सुषु- म्णा**के द्वारा प्रवाह करता है । दिनरातमें कभी **इंडा,** कभी**पिंगला,** कभी **सुषुम्णा** में प्राण वायु प्रवाह करता रहता है । * जैसे बहुतेरी छोटी २ नदियां भिन्न २ स्थानों से निकल गंगा, यमुना और सरस्वतीके साथ मिल सब एकधार हो सागरमें जा गिरती हैं, ऐसेही शरीरकी सबनाड़ियां शरीरके सम्पूर्ण वायुके प्रवाह के संग बहतीहुई **इंडा, पिंगला, सुषुम्णा,**से मिल भ्रमध्यमें सब एकत्र हो मस्तककी ओर सहस्रदलरूप सागरमें जा-

* प्राणके प्रवाहकी चाल शिवस्वरोदयसे जानना ।

मिलती हैं; इसी कारण **प्राणायाम** करनेसे सम्पूर्ण शरीरकी नाड़ियां शुद्ध होजाती हैं।

साधकोंके बोध निमित्त शरीरके मुख्य२ नाडियोंके स्थान (**चित्र न० ६**)में अंकित कर दिखलाये गये हैं, जिनके नाम इस स्थानमें वर्णन कियेजाते हैं।

उक्त चित्रमें जो काली सर्पिणी ऐसी रेखा पद्मोंकी दाहिनी ओरसे लिपटी हुई है वह **पिंगला** है, और श्वेत रेखा जो वाम ओरसे लिपटी हुई है वह इंडा है॥

जो दलोंके मध्य होकर कई पतली रेखायें एक संग बीचों बीच देख पड़ती हैं. वे **सुषुम्णा, वज्रा, चित्रिणी** और **ब्रह्मनाडी**है। जो कदलीके स्तंभके परदोंके समान एक दूसरेके भीतर होती चलीगयी हैं। जिनका वर्णन पूर्वोक्त तीनों श्लोकोंमें होचुका है॥

अब इन **ईडा, पिंगला, सुषुम्णा**को छोड़ २१ नाडियां और हैं—**१. हस्तिजिह्वा**-दक्षिण नेत्रमें। **२. गान्धारी**-वाम नेत्रमें। **३. अलंबुषा**- मुखमें (ये सब नाड़ियां **द्विदलसे** निकली हैं)। **४. पूषा**— दक्षिण कर्णमें। **५. यशस्विनी**-वामकर्णमें। **६. वारुणा**-दक्षिण स्कन्धके ऊपर भागमें। **७. एमारिका** - वामस्कन्के ऊपर भागमें **८. शीता**-दक्षिण स्कन्धके मध्य भागमें। **९. मातृका**-वाम स्कन्धके मध्य भागमें। **१०. शिवा**-दक्षिण स्कन्धके नीचे भागमें। **११. तिक्ता**—वाम स्कन्धके नीचे भागमें **१२. क्षीरवती**-दक्षिण कक्ष (कांखा) के ऊपर भा०। **१३. वाला**— वामकक्षके ऊपर भा० **१४. अमृता**-दक्षिण कक्षके निचले भागमें। **१५. सरस्वती**- वामकक्षके निचले भागमें (अंक ६ से लेकर १५ तककी सब नाड़ियां **षोडशदल**से निकली हैं)। **१६. पीता**- दक्षिण हृदयके ऊपर भा०। **१७. नीला**-दक्षिण हृदयके नीचे भागमें **१८. वृन्दा** (पयस्विनी)-वाम हृदयके ऊपर भागमें। **१९. तारका**-वाम हृदयके नीचे भा० (अंक १६से १९ तककी सब नाड़ियां **द्वादशदल**से निकली हैं) **२०, २१, २२, विश्वोदरी, अतीता, तारा**- दक्षिण कुक्षिके ऊपर भा०। **२३, २४, २५, सारदा, माधवी, तारका**- वाम कुक्षिके ऊपर भाग। **२६, २७, २८,**

इल्तिका, युक्ता, शुक्रा, दक्षिण कुक्षिके नीचे भागमें । २६, ३०, ३१ । **इल्ता, विजोलिका, काली,** वामकुक्षिके नीचे भा० (अंक २० से ३१ तककी सब नाड़ियां **दशदल**से निकली हैं) ३२ ३३, **सूत्रा, कुहू-** दक्षिण कटिके ऊपर नीचे भागमें जिसमें कुहू लिंगस्थानमें है । ३४, ३५, **त्रिश्वा, अवंतिका-** वाम कटिके ऊपर औ नीचे भा० [अंक ३२ से ३५ तककी सब नाड़ियां **षडदल**से निकली हैं] ३६. उक्त ३५ नाड़ियोंसे भिन्न एक छत्तीसवीं नाड़ी **शंखिनी** है जो गुदास्थानमें चतुर्दलसे निकल कर सूक्ष्म रूपसे सहस्रदल तक लगीहुई है । (उक्त चित्रमें सिद्धासनके कारण चतुर्दल कमलका स्थान देख नहीं पड़ता, इसकारण यह नाड़ी गुप्त रूपसे जानना) ।

उक्त प्रकार ३६ मुख्य नाड़ियां **मेरुदण्ड**के वहिर्भाग (ऊपर भाग) से निकल **अस्थि-कोश**में प्रवेश कर फिर दूसरी ओरसे छोटी २ नाड़ियां बन **मेरुदण्ड**के अन्तर्भाग [भीतरवाले भाग] में लौटकर मिलगई हैं * इसकारण [३६ × २=७२] छत्तीसको दूना करदेनेसे सबमोटी पतली मिलाकर बहत्तर नाड़ियां मुख्यहुईं, इन बहत्तरमें एक २ की हजार शाखायें होगई हैं इसकारण सब ७२००० बहत्तर हजार हुईं । फिर इन ७२००० में **शंखिनी**की दोनों भागकी दोहजार नाड़ियोंको छोड़ शेष ७०००० नाड़ियोंकी पांच २ + शाखायें होकर सब ३५०००० साढ़ेतीन लक्ष नाड़ियां होगई हैं ॥ इती ॥

---

*शरीरपरिच्छेदशास्त्र [Anatomy]के अवलोकनसे ये बातें स्पष्ट जाननेमेंआतीहैं ॥

+ इनहीं पांचों होकर पांचों तत्त्व वहिर्मुख प्रवाह करते हैं।काम, क्रोध , लोभ ,मोह ; अहंकार. को भि इनहीं पांचोंसे सम्बन्ध है, इनहींके विकारसे पांचों उत्पन्न होतेहैं ।

॥ इति ॥

अथ चतुर्दलपद्मवर्णनम् ।

—ः()ः—
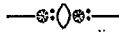
अथाधारपद्मं सुषुम्णास्यलग्नं ध्वजाधोगुदोर्ध्वं चतुःशोणपत्रम् ॥
अधोवक्त्रमुद्यत्सुवर्णाभवर्णैर्वकारादिसान्तैर्युतं वेदवर्णैः ॥ १ ॥
अमुष्मिन्धरायाश्चतुष्कोणचक्रं समुद्भासिशूलाष्टकैरावृतन्तत् ॥
लसत्पीतवर्णं तडित्कोमलांगं तदंके समास्ते धारायाः स्वबीजम् ॥ २ ॥
चतुर्बाहुभूषो गजेन्द्राधिरुढस्तदंके नवीनार्कतुल्यप्रकाशः ॥
शिशुः सृष्टिकारी लसद्वेदवाहु र्मुखाम्भोजलक्ष्मीश्चतुर्भागवेदः ॥ ३ ॥
वसेदत्र देवीच डाकिन्यभिख्या लसद्वेदवाहूज्ज्वला रक्तनेत्रा ॥
समानोदितानेकसूर्य्यप्रकाशा प्रकाशं वहन्ती सदाशुद्धबुद्धेः ॥ ४ ॥
वज्राख्या वक्त्रदेशे विलसति सततं कर्णिका मध्यसंस्थम्।
कोणं तत्त्रैपुराख्यं तडिदिवविलसत् कोमलं कामरूपम् ॥
कन्दर्पो नाम वायु र्विलसति सततं तस्य मध्ये समन्तात्।
जीवेशो वन्धुजीवप्रकरमभिहसन् कोटिसूर्य्यप्रकाशः ॥ ५ ॥
तन्मध्ये लिंगरूपी द्रुतकनककलाकोमलः पश्चिमास्यो।
ज्ञानध्यानप्रकाशः प्रथमकिसलयाकाररूपः स्वयम्भूः ॥
उद्यत्पूर्णेन्दुविम्वप्रकरकरचयस्निग्धसंतानहासी।
काशीवासी विलासी विलसति सरिदावर्त्तरूपप्रकारः ॥ ६ ॥
तस्योर्ध्वे विषतन्तुसोदरलसत्सूक्ष्मा जगन्मोहिनी ।
ब्रह्मद्वारमुखं मुखेन मधुरं साच्छादयंती स्वयम् ॥
शंखावर्तनिभा नवीनचपलामाला विलासास्पदा ।
सुप्ता सर्पसमा शिरोपरिलसत्सार्द्धत्रिवृत्ताकृतिः ॥ ७ ॥

कूजन्ती कुलकुण्डली च मधुरं मत्तालिमालास्फुटम् ।
वाचःकोमलकाव्यवन्धरचना भेदातिभेदक्रमैः ॥
श्वासोच्छ्वासविवर्त्तनेन जगतां जीवो यया धार्य्यते ।
सा मूलाम्बुजगह्वरे विलसति प्रोद्दामदीप्तावली ॥ ८ ॥
तन्मध्ये परमाकलाति कुशला सूक्ष्मातिसूक्ष्मा परा ।
नित्यानंदपरम्पराति चपलामालालसद्दीधितिः ॥
ब्रह्माण्डादिकटाहमेव सकलं यद्भासया भासते ।
सेयं श्रीपरमेश्वरी विजयते नित्यप्रबोधोदया ॥ ९ ॥
ध्यायेत्ताम्मूलचक्रांतरविवरलसत्कोटिसूर्य्यप्रकाशाम् ।
वांचामीशो नरेंद्रः सभवति सहसा सर्वविद्याविनोदी ॥
आरोग्यं तस्य नित्यं निरवधि च महानंदचिन्तात्मरात्मा ।
वाक्यैः काव्यप्रबंधैः सकलसुरगुरून् सेवते शुद्धशीलः ॥ १० ॥

। भाष्यम् ॥

अथाधारेति-अथ अनन्तरम् । (आधारपद्मम) मूलाधारपद्मम् मस्तीतिशेषः । कीदृशं (सुषुम्णास्यलग्नम्) मेरुदण्डमध्यस्थिताया नाड्या आस्ये मुखे लग्नं युक्तं । पुनः कीदृशम् ?(ध्वजाधः) ध्वजस्य लिंगस्य अधः अधोदेशे (गुदोर्ध्वे) गुदोपरि गुदायाद्व्यंगुलोपरीत्यर्थः । पुनः की०,-(चतुः शोणपत्रम्) चत्वारि शोणानि रक्तानि पत्राणि यस्य तत् । पुनः कीदृशम् ? अधोवक्रम् अधोमुखम् । पुनः कीदृशम् ?[वेदवर्णैश्चतुर्वर्णैर्युतं युक्तम् । वेदवर्णैं कीदृशैः, [वकारादिसान्तैः] 'वकार' एव आदौयेषां ते वकारादयः 'स' एव अन्ते येषां ते सान्ताः वकारादयश्चते सान्ताः वकारादिसान्तास्तै वं, शं, षं सेति चतुर्वर्णैर्युक्तमित्यर्थः? । पुनः कीदृशैः? [उद्यत्सुवर्णाभवर्णैः] तप्तकांचनवर्णसदृशैः रक्तवर्णेषु चतुष्पत्रेषु पूर्व्वादिक्रमेण तप्तकांचनवर्णं व श ष से युक्तं साधकैर्ज्ञेयमित्यर्थः ।

सुषुम्णा मुखसंसक्तं लिंगगुदयोरन्तरालेऽधोमुखं तप्तस्वर्णाभ व श ष सेतिचतुष्टयाक्षराश्रयीभूतै श्चतुर्भिर्लोहितदलैर्युतं मूलाधारपद्ममस्त इति भावार्थः ॥

अमुष्मिन्निति— अमुष्मिन् मूलाधारपद्मे (धरायाः) पृथिव्याः (तत्) प्रसिद्धं (चतुष्कोणचक्रं) चतुरस्रमण्डलं, वर्तत इतिशेषः । कीदृशम् ? (समुद्भासि) सम्यग्दीप्यमानम् । की० [शूलाष्टकैरावृतम्] अष्टसंख्यकैः शूलैर्वेष्टितम् । तदंके तस्य चतुष्कोणस्य क्रोडे (धरायाः) पृथिव्याः स्वबीजं लँ [समास्ते] सम्यगुतिष्ठति । की०, [लसत्पीतवर्णम्] दीप्यमानगौरवर्णम् - पु० की०, [तड़ित कोमलांगम्] विद्युदिवकोमलांगम् यस्यतादृशम् ॥ तथाच, मूलाधारपद्मे अष्टसंख्यकशूलावृतस्य पृथिव्यारचतुष्कोणचक्रस्यमध्ये पृथ्विबीजं पीतवर्णं[लँ]तिष्ठतीतिभावः ॥२॥

चतुरिति—तदंके चतुष्कोणमण्डलमध्यवर्ति [लं] रूपबीजक्रोडे (शिशुःसृष्टिकारी) बालस्वरूपः सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा, आस्ते इति शेष : । की०, (चतुर्बाहुभूषः) चतुर्भिर्बाहुभिर्भूषा भूषणं यसयतादृशः। चतुर्भिर्बाहुभिर्भूषित श्चतुर्भुज इत्यर्थः । पु० की०, (गजेन्द्राधिरूढः) हस्तिश्रेष्ठमैरावतमारूढ इत्यर्थः । पुनः की०, (नवीनार्कतुल्यप्रकाशः) नवीनो नूतनो योऽर्क स्तत्तुल्यस्तत्सदृशः प्रकाशो यस्य तादृशः प्रातःकालीन सूर्य्यसदृशरक्तवर्ण इत्यर्थः । पुनःकी०, (लसद्वेदबाहुः) लसन्तो दीप्यमाना वेदाः स । माद्यो बाहुषु यस्य तादृशः । पुनः की०, (मुखाम्भोजलक्ष्मीचतुर्भागवेदः) मुखाम्भोजे वदनसरोजे लक्ष्मीः सम्पति श्चतुर्भाग-श्चतुर्खण्डोवेदो यस्य तादृशः अर्थात् सामादिचत्वारोवेदा ब्रह्मणोमुखे स्फुरन्तीत्यर्थः तथाच, मूलाधारपद्मे ऐरावतारुढ श्चतुर्हस्तो रक्तवर्णः शिशुरूपो ब्रह्मा तिष्ठतीति फलितार्थः । ॥३॥

वसेदिति-अत्र लँ रूपपृथ्वीबीजे [डाकिन्यभिख्या] डाकिनी नाम्नी(देवी) अपि वसेत् निवसति । सा डाकिनी की० (लसद्वेदबाहूज्ज्वला) लसद्भि र्दीप्तियुक्तै र्वेदबाहुभि श्चतुर्भुजैरुज्ज्वला प्रकाशमाना, चतुर्भुजेत्यर्थः । पु० की० रक्तनेत्रा रक्तनयना । पु० की०, [समानोदितानेकसूर्य्यप्रकाशा] समानोदिताना मेककालोदिताना मनेकसूर्य्याणां द्वादशादित्यानां प्रकाशइव प्रकाशो यसयास्तादृशी । पु०की०, (शुद्ध बुद्धेः) शिशुरूपसच ब्रह्मणः प्रकाशं लोक निर्म्माणे स्फूर्ति सदा सर्वस्मिन्काले [वहन्ती] सम्पादयन्ती । सृष्टिकर्तृत्वशक्तिंविना स्फूर्त्यभावेन किंचित् कर्तुमक्षमत्वात् । यद्वा शुद्धबुद्धेः स्वच्छज्ञानस्य प्रकाशं सदा सर्वदा वहन्ती जनयन्तीत्यर्थः ।

लँ रूपं पृथ्वीबीजस्यान्तर्ब्रह्मणोऽन्तिके निर्मलमतेर्योगिनोब्रह्मज्ञानं जनयन्ती, युगपत् कालोदितकोटिसूर्य्य इव प्रकाशयन्ती लोहितलोचना चतुर्भुजा डाकिनी नाम्नी शक्तिरप्यस्तीतिभावः ॥४॥

वज्रेति–(वज्राख्यावक्त्रदेशे) वज्रानाम्नी नाडी तस्यामुखप्रदेशे [कर्णिकामध्य-संस्थम्] मूलाधारपद्मबीजकोशान्तःस्थम्, [तत्] पुरसिद्धं [त्रिपुराख्यं कोणम्] त्रिकोणमिति यावत् (सततम्) निरन्तरम् (विलसति) शोभते । पुनः की०, [तडिदिव विलसत्] विद्युदिवप्रकाशमानम् कोमलम् मनोज्ञम् काम रूपम् कन्दर्पवत् मनोहराकारम्। (तस्य) त्रिकोणस्यमध्ये [समन्तात्] चतुर्दिक्षु [कन्दर्पो नाम वायुः] कन्दर्पाख्योऽनिलः [सततम्] निरन्तरं (विलसति) विलासंकरोति वर्त्तत इत्यर्थः । स० की०, (जीवेशः) प्राणरचकः [बन्धूजीवप्रकरम्] रक्तवर्णमाध्याह्निक पुष्पाणां समूहम् (अभिहसन्) तिरस्कुर्व्वन् । बांधूलीपुष्पादप्यस्यातिशयरक्तवर्णत्वात्। पुनः की०, (कोटि सूर्य्यप्रकाशः) कोटि संख्यकसूर्य्याणां प्रकाश इव प्रकाशो यस्य तादृशः ।

मूलाधारपद्मकर्णिकान्तर्गतविद्युद्वर्णस्य सततवज्रामुखप्रदेशवर्त्तमानस्य त्रिपुराख्यकोणस्यान्तः रक्तवर्णः कन्दर्पो नाम वायुर्वर्तत इति भावार्थः।५।

तन्मध्य इति–(तन्मध्ये) तस्य त्रिकोणस्य मध्ये (लिंगरूपी). लिंगाकारः स्वयम्भूः (विलसति) विलासंकरोति । की० (द्रुतकनककलाकोमलः) द्रुता द्रवीभूता या कनककला स्वर्णांशः तद्वत् कोमलः स्वर्णवर्णः कमनीयमूर्तिरित्यर्थः । पु० की०, (पश्चिमास्यः) अधोमुखः । पु० की० (ज्ञानध्यानप्रकाशः) ज्ञानेन तत्वज्ञानेन ध्यानेन समाधिना प्रकाशो यस्य तादृशः ज्ञानध्यानाभ्यां गम्य इत्यर्थः । पुनः की०, (प्रथमकिसलयाकाररूपः) प्रथमं नवीनं यत् किसलयं तदाकारं तादृशं रूपं सौदर्य्यं यस्य स नवपल्लववर्ण इत्यर्थः । पु० की०, [उद्यदिति] उद्यत; उद्गच्छतः पूर्णेन्दुबिम्बप्रकरस्य पूर्णचन्द्रमण्डलसमूहस्य करचयो रश्मिराशिस्तस्य स्निग्धं रम्यं यत् सन्तानं विस्तृतिः तद्धसति तिरस्करोत्येवंशीलः अतिशुभ्राकार इत्यर्थः । पुनः की०, (काशीवासी) काश्यां वासशीलः । पुनः की० (विलासी) क्रीडनशीलः । पुनः की०, (सरिदावर्त्तरूपप्रकारः) सरिदावर्त्तः नदीजलभ्रमः तद्रूपप्रकारः तदाकारसदृशः ।

मूलाधारपद्मकर्णिकान्तर्गतत्रिकोणमध्यवर्ती अधोमुखो ज्ञानध्यानैकगम्योनवपल्लववर्णो लिंगरूपी स्वम्यम्भूर्वर्तत इतिभावः ॥ ६ ॥

तस्येति–(तस्योर्ध्वे) तस्य स्वयंभूलिंगस्य ऊर्ध्वं उपरिभागे (मूलाम्बुजगाह्वरे) मूलाधारपद्मरन्ध्रे (सा) प्रसिद्धा कुलकुण्डली (विलसति) विलासंकरोति वर्त्तत इत्यर्थः । सा

की०, (विषतन्तुसोदरलसत्सूक्ष्मा) विषतन्तुर्मृणालसूत्रं तत्सोदरातत्सदृशी लसन्ती प्रकाशमाना, साचासौ सूक्ष्मा तन्वी च, मृणालसूत्रवत् क्षीणाकारेत्यर्थः । पुनः की०, (जगन्मोहिनी) संसार मोहजनिका जगद्वशकारिणी वा । किं कुर्व्वती ? (स्वयम्)आत्मना मधुर मनोहरं (ब्रह्मद्वारमुखम्) सुषुम्णाख्यनाडी वदनं (मुखेन) निजवदनेन (आच्छादयन्ती) आवृण्वतिः।पु० की०,(शंखावर्त्तनिभा) शंखस्य आवर्त वेष्टनं तन्निभा तत्सदृशी शंखावर्त्त वद्वेष्टिता इत्यर्थः । की०, (नविन चपला माला) अभिनवोदिता या चपलामाला विद्युच्छ्रेणिः तद्वत्(विलासास्पदा) क्रीडास्थानस्वरूपा, तत्तुल्यप्रकाशमानेत्यर्थः पुनः की०, (सुप्ता) कृतशयना (सर्पसमा) सर्पाकारा (शिरोपरि) स्वयम्भूलिंगोपरि (लसन्ती) दीप्तिंकुर्व्वती (सार्द्धत्रिवृत्ता) सार्धवलयत्रवेष्टनयुक्ता (आकृतिः) स्वरूपं यस्यास्तादृशी । ॥ ७ ॥

कूजन्तीति- पुनः किं कुर्व्वती, (कोमलेति) कोमलस्य मंजुलस्य काव्यबंधस्य काव्यसंदर्भस्य या रचना तस्या [भेदातिभेदक्रमैः]अतिशय भेद अचादिवृत्तानुसारयथास्थानपदविन्यासैः (मधुरम्) मनोहरं [मत्तालिमालास्फुटम्] मत्ता या अलिमाला भ्रमरपंक्तिः (तद्वत्) तद्ध्वनिवत् स्फुटं च यथास्यात तथा (वाचः) वाक्यानि । [कूजन्ती] ध्वनन्ती । सा का इत्याकांक्षायामाह (श्वासोच्छ्वासेति) यया कुलकुण्डलिन्या श्वासोच्छ्वासयोर्विवर्त्तनेन गमनागमनेन जगतां जगत्स्थप्राणिनां जीवः । प्राणः धार्यते ध्रियते, संरक्षयत इत्यर्थः । की०, [मोद्दामदीप्तावली] मोद्दामा अत्युत्कृष्टा दीप्तावली दीप्तिश्रेणि र्यत्र तादृशी, अतिप्रकाशमानेत्यर्थः । (मूलाधारकर्णिकान्तर्गतस्वयम्भूर्लिंगोपरिवर्त्तमाना सर्पाकारसार्धत्रितयवेष्टनविशिष्टा विद्युत्विलासस्वरूपा कुलकुण्डलिनी शक्तिस्तिष्ठतीत्यर्थः । ॥ ८ ॥

तन्मध्यइति- [तन्मध्ये]कुलकुण्डलिन्या मध्ये (अतिकुशला) अतिशयज्ञानदानप्रवीणा [परमकला] महाप्रकृतिः, आस्ते, इतिशेषः।की०, [सूक्ष्मातिसूक्ष्मा] अत्यन्ताल्पाकारा । [परा] श्रेष्ठा (नित्यानन्दपरम्परा) नित्यं आनन्दसन्धारा यत्र तादृशी, नित्यानन्दमयीत्यर्थः । की०, (अतिचपलामालालसद्दीधितिः) अतिशयेन चपलामालावत् विद्युद्वलिवत् लसन्ती प्रकाशमाना दीधितिः रश्मिर्यस्यास्तादृशी । [सकलमेव] सर्व्वमेव (ब्रह्माण्डादि) भू र्भुवः स्वरित्यादि रूपं (कटाहम्) वर्तुलाकारलोहपात्रविशेषम् अर्थात् सकल सृष्टिरूप कटाहमिति यावत् [यद्भासया] यस्या परमकलाया भासया तेजसा [भासते] दीप्यते।[सेयम्] सा पूर्वोक्ता इयम् (श्रीपरमेश्वरी)महा प्रकृतिर्भगवती [विजयते] विशेषेण जययुक्ता भवति । की०, [नित्यप्रबोधोदया] नित्यप्रबोधस्य नित्यज्ञानस्य उदय प्रकाशो यस्या स्तादृशी । कुण्डलिन्या मध्ये अतिसूक्ष्मस्वरूपा विद्युन्मा-

तावत् प्रकाशमाना महाशक्तिर्विद्यते यत्कान्त्या सकलमेव ब्रह्माण्डं दीप्यत इतिभावः ॥ ९ ॥

ध्यायेदिति— (मूलचक्रान्तरविवरे) आधारचक्रातर्गतरन्ध्रे (लसत्कोटिसूर्य्यप्रकाशाम) लसन् दीप्यमानः कोटिसूर्य्याणांप्रकाशइव प्रकाशो यस्यास्ताद्दशी, (ताम) प्रस्तुताम् परमकलां भगवतीं (ध्या येत) चिन्त-येत य इतिशेषः । (सः) पुरुषः (वाचामीशः) वाक्यानां ईशः स्वामी वाक्यरचन-समर्थः वृहस्पतितुल्य इति यावत । (नरेन्द्रः) मनुष्यश्रेष्ठः । [सहसा] झटति [सर्वविद्याविनोदी] सर्वशास्त्र विहरणशीलश्च भवति । [च पु०तस्य] ध्यानकर्तुः पुरुषस्य [नित्यं] सततँ [निरवधि] असीम अत्यन्तमिति यावत् [आरोग्यम्) रोगराहित्यम् भवति । सः पुरुषः [महानन्दचिंतान्तरात्मा] अति प्रसन्नमनस्कः ' शुद्धशील:' स्वच्छस्वभावः अथवा निर्म्मल चरितः सन् [काव्यप्रबन्धैः] काव्य-सदर्भैः 'वाक्यैः' (सकलसुरगुरून) सकलदेवतान् गुरुंश्च [सेवते] स्तौतीत्यर्थ ॥ १० ॥

भाषाटीका ॥

अर्थात् सुषुम्णाके मुखसे लगा हुवा लिंगसे नीचे और गुदासे चार अँगुल ऊपर चार दलका एक पद्म है जिसको **आधारचक्र** कहते हैं, इसके चारों दल शोण अर्थात रक्तवर्ण हैं, अधोमुख अर्थात नीचेमुख हैं। साधकोंको चाहिये, कि प्राणायाम के समय इसको ऊर्द्धमुख ध्यान करें अथवा **मूलबंध** * कर इसको ऊर्द्धमुख करलें । फिर इन चारो दलों पर ['व' से 'स' तक] चार अक्षर [**व, ष, श, स,**] तप्तसोनेके रंग चमकते हुये शोभायमान होरहेहैं १

फिर इस **मूलाधार** के बीज चौकोन **पृथ्वीचक्र** शोभायमान होरहा है जो अष्टकोण आठ शुलों से घिराहुआ है जिसके क्रोड गोद में पीतवर्ण दामिनी सा दमकता हुवा अत्यन्त कोमल **लँ** पृथ्वी बीज है ॥ २ ॥

उक्त चतुष्कोण [पृथ्वीचक्र] के क्रोड (गोद) में प्रातःकाल के नवीन सूर्य्यके समान रक्तवर्ण बाल स्वरूप सृष्टीकर्त्ता अर्थात ब्रह्मा चार भुजाओंसे भूषित ऐरावत हस्तीपर सवार बिराजमान होरहे हैं, जिनकी चारों भूजाओं मे चारों वेद शोभायमान हैं और जिनके चारों मुख से भी सामादि चारों वेद उच्चारण होरहे हैं ॥ ॥ ३ ॥

फिर इसी चतुष्कोणचक्रके पृथ्वीबीजमें ब्रह्मा की शक्ति, डाकिनी नाम देवि अत्यन्त

* देखो श्रीस्वामि हंसस्वरूप कृत प्राणायामविधि पृष्ठ ३८ ।

नंबर १

इस चक्रका ठीक स्थान अनाटमीसे नीचे दिखलाया जाता है
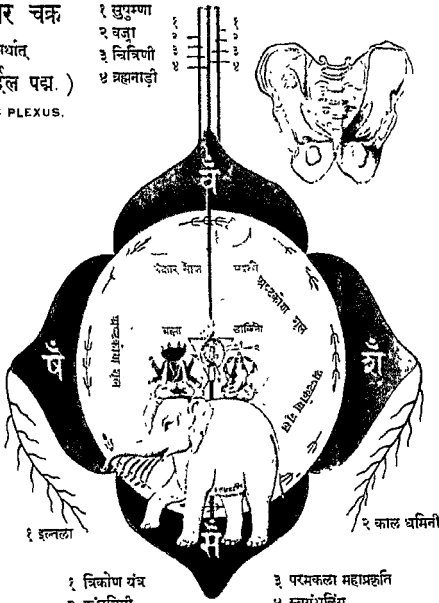
नामचक्र—आधार चक्र

स्थान—योनि

दल—चतुः

वर्ण—रक्त

दलोंके अक्षर—वँ, शँ, षँ, सँ

नाम तत्व—पृथिवी

तत्वबीज—लँ

बीजका वाहन—हस्ति

देव—ब्रह्मा

देवशक्ति—डाकिनी

यंत्र— चतुष्कोण

ध्यानफल—वक्ता, मनुष्योंमें श्रेष्ठ, सर्व विद्याविनोदी, आरोग्य, आनन्द चित्त, काव्य प्रबन्धमें समर्थ होता है।

अंग्रेजी नाम

PELVIC PLEXUS.

The Graphic Arts Co. Calcutta.

प्रकाशमान चारभुजाओं से युक्त, रक्त नयना प्रलयकालके द्वादश आदित्य के समान तेज धारण किये प्रकाशमान होरहीहै और शुद्धबुद्धी जो शिशुरुप ब्रह्मा तिनको प्रकाश देरहीहै अर्थात् सृष्टि रचनेकी सत्ता देरहीहै । क्योंकि विना शक्ति कोइ देव कुछ करनेको समर्थ नहीं है। अथवा शुद्धबुद्धि जो योगीजन उनको ईशित्व सिद्धी प्रदान कर रहीहै ॥ ४ ॥

(वज्रा)* नामकी नाडीके मुखसे मिलाहुआ मूलाधारपद्म की कर्णिकाके मध्य त्रिपुरा-देवी सम्बन्धी " त्रिपुराख्य " नामकरके एक " त्रिकोणयन्त्र " अति कोमल "कामरुप" काम-देवके समान सुन्दर अथवा साधकोंकी कामनाओं को पूर्णकरनेवाला, बिजलीके समान शोभाय-मान होरहाहै, फिर इस त्रिकोण यन्त्रके मध्य में " कन्दर्प " नाम वायु प्राणियोंके प्राण की रक्षा करनेवाला रक्तवर्ण बंधूलि + पुष्पकी लालीको (अभिहसन) लज्जीतकरनेवाला, कोटि सूर्यसमान प्रकाशमान, चारों ओरसे विलास कररहाहै, जो चारों ओर सम्पूर्ण शरीरमें भ्रम-ण करता हुआ संसारी जीवोंको अपने वशमें रखताहै ॥ ५ ॥

उक्त " त्रिकोनयन्त्र " के मध्यमें तप्तसोने के समान कोमल, अतिकमनीय, अधो मुख, ध्या-नध्यान द्वारा जानने योग्य, नवीन पल्लवके समान सुन्दर, पूर्णचन्द्रकी किरणोंके समान प्रकाश-मान, काशीमें वास करनेवाला, विलासयुक्त नदीजलके समान लहरें मारता हुआ, लिंगाकार " स्वयम्भूलिंग " शोभायमान होरहाहै ॥ ६ ॥

उक्त " स्वयम्भूलिंग " के ऊपर मूलाधार पद्मके गह्वर में अत्यन्त श्रेष्ठ प्रकाश धारण कियेहुए कमलनालकी सूतसी अत्यन्त पतली, अपनी शोभासे जगतको मोहने वाली, ब्रह्मद्वारके मुखको अर्थात् सुषुम्णा नाडी के मुखको अपने मुखसे आच्छादन कियेहुए शँख के आवेष्टन ऐसी, सर्प के समान साढे तीन लपेटोंसे महाकालको लपेटतीहुई, नवीन विद्युत्के समान विलास करने वाली निद्रिता अर्थात् शयन किये हुए " कुलकुण्डलिनी " × नाम महामाया मत्तभ्रमर के झुण्ड ऐसी

* यह नाड़ी सुषुम्णाके मध्य वर्तमान है जो चित्रमें अंक २ करके पीतवर्ण दिखलायी गयी है । पद्मके ऊपर भागमें देखलेना ।

+ इसकी दुपहरिया, मरहटी दुपारीचेंफूल, गुजराती बपोरिया, करनाटकी बंदुरे,तैलंगी निति-मल्ली, मार्कनचेट्टु,बेगसिनकेट्टु,पंजाबी गुलदुफारिया, लैटीन Latin Pentapetes Phorincea

× यहकुण्डलिनी वाग्वादिनी अर्थात् सरस्वतीरूपसे वर्त्तमान है इसीके द्वारा प्राणियोंको शब्द

मधुरध्वनी से गुँनार करती हुई निवास कररही है। यह कुण्डलिनी कैसी है; कि अति सुन्दर काव्य-रचना की सामर्थ देनेवाली है और श्वासोच्छ्वास द्वारा अर्थात् प्राणापानके गमनागमनद्वारा जीवों के प्राण को धारणकरती है ॥७, ८ ॥

फिर तिस कुण्डलिनीके मध्य, अतिकुशला अर्थात् अतिशय ज्ञानकी देनेवाली, अत्यन्त सूक्ष्मा और श्रेष्ठा, नित्यानन्द स्वरूपा, विद्युतमालाके समान रश्मियों करके प्रकाशमाना " परमकला " नाम करके [महाप्रकृति] शोभायमान होरहीहै, जिसके तेजसे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड प्रकाशित होरहाहै। यह परमेश्वरी जययुक्त होकर नानाप्रकारके पदार्थोंको देनेमें समर्थ हो रहीहै और अपनी कृपाकटाक्षसे-जीवोंके लिये नित्य स्वच्छज्ञानकी उदय करनेवाली है ॥ ९ ॥

उक्त प्रकार वर्णन कियेहुए मूलाधारचक्रकी कर्णिकास्थित त्रिकोणयन्त्रमें कुलकुण्ड-लिनीके मध्य करोड़ों सूर्य्यके समान प्रकाशमाना महा प्रकृति को जो ध्यान करता है, वह वचन रचनामें बृहस्पतिके समान अर्थात् अत्यन्त चतुर वक्ता, मनुष्योंमें श्रेष्ठ, शीघ्र सर्व विद्याका जानने-वाला होजाता है, नित्य आरोग्य रहता है और सदा महा आनन्द को प्राप्त कियेहुए शुद्ध-स्वभाव सहित नाना प्रकारके काव्यप्रबन्ध और स्तुति द्वारा बृहस्पति इत्यादि देवताओंको प्रीति-युक्त अपने वशमें करलेताहै ॥ १० ॥

ध्यानकरनेवालोंको चाहिये, कि कमसे कम पांच मिनट तक एक २ "चक्रपर" ध्यान द्वारा चित्तवृत्तिको ठहरातेहुए " चतुर्दल " से " सहस्रदल " पर्य्यन्त आवे घंटेमें जावें, ऐसा अभ्यास करनेसे प्राण और मन दोनों ऐसे निरोध होजातेहैं, कि जिसका आनन्द अकथनीय है ॥

उच्चारण करनेकी और चिरकाल जीवित रहनेकी शक्ति प्राप्त रहती है ।

॥ इति ॥

अथ षड्दलपद्मवर्णनम् ।

सिन्दूरपूररुचिरारुणपद्ममन्यत् सौषुम्णमध्य घटितं ध्वजमूलदेशे ।
अंगच्छदैःपरिवृतं तड़िदाभवर्णै र्वाद्यैःसबिन्दुलसितैश्च पुरन्दरान्तैः ॥१॥
अस्यान्तरे प्रविलसद्विशदप्रकाश मम्भोजमण्डल मथो वरुणस्यतस्य ।
अर्द्धेन्दुरूपलसितं शरदिन्दु शुभ्रं वँकारवीज ममलं मकराधिरूढम् ॥ २ ॥
तस्यांकदेशकलितो हरिरेव पाया न्नीलप्रकाशरुचिरश्रियमादधानः ।
पीताम्बरः प्रथमयौवनगर्व्वधारी श्रीवत्सकौस्तुभधरो धृतवेदवाहुः ॥३॥
अत्रैवभाति सततं खलु राकिनी सा नीलाम्बुजोदरसहोदरकान्तिशोभा ।
नानायुधोद्यतकरैर्लसितांगलक्ष्मीर्दिव्याम्बराभरणभूषित मत्तचित्ता॥४॥
स्वाधिष्ठानाख्यमेतत् सरसिज ममलं चिन्तयेद्योमनुष्य। स्तस्याहंकार-
दोषादिचसकलरिपुः क्षीयते तत्क्षणेन । योगीशः सोपी मोहाद्भुततिमिर-
चयो भानुतुल्यप्रकाशो । गद्यैः पद्यैः प्रबन्धैर्विरचयति सुधाकाव्य
सन्दोहलक्ष्मीम् ॥ ५ ॥

॥ भाष्यम् ॥

सिन्दूरेति—(सिन्दूरपूरेति) सिन्दुरस्यपूरः राशिस्तद्वत् (रुचिरम्)सुन्दरम् (अरुणम्] रक्तवर्णं च तत् (पद्मम्)स्वाधिष्ठाननामकं कमलम् [अन्यत्] भिन्नम् मूलाधारकमलादितिशेषः। कीदृशम् [ध्वजमूलदेशे] लिंगमूल प्रदेशे [सौषुम्णमध्यघटितम्] सुषुम्णायानाड्या मध्यघटितं ग्रथितम् । पुनः की०, [अँगच्छदैः) पटपत्रैः [परिवृत्तम्] वेष्टितँ पटपत्रैर्युक्तमित्यर्थः। की०द०अंगच्छदैः [तड़िदा-भवर्णैः] विद्युतसमकान्तिभिरक्षरैर्युक्तैरितिशेषः । पु० की० दृ०, (वाद्यैः) व एव आद्यो येषांतैः । पुनः की०दृ०, (पुरन्दरान्तैः) पुरन्दरो लकारएव अन्तो येषां तादृशैः ब, भ, म, य,

लैरित्यर्थः पु० की०, (सविन्दुलसितैः) सविन्दवः विन्दुयुक्ताः अतएव लसिता शोभिताश्चतादृशैः

अकारनुस्वारविशिष्ट व भ म य र लेति षड्वर्णांकितषट्पत्र-वेष्टितं लिङ्गमूलदेशस्थं सिन्दूरवर्णकं स्वाधिष्ठानसंज्ञकं पद्मं मूलाधारपद्मादतिरिक्तमस्तीतिभावार्थः ॥१॥

अस्येति—(अस्यांतरे) अस्यस्वाधिष्ठानपद्मस्य अन्तरे मध्ये (वरुणस्य) जलाधिष्ठातृदेवस्य (अम्भोजमण्डलम्) जलचक्रं वर्त्तते इतिशेषः। की० अम्भोजमण्डलम् (प्रविलसद्विशदप्रकाशम्) प्रकर्षेण विलसन् विशदो निर्म्मलः प्रकाशो यस्यतादृशं शुल्कवर्णमित्यर्थः । (अथः) पुनः तस्य चक्रस्य सम्बन्धि (वरुणस्य) जलाधिष्ठातृदेवस्य वंकारवीजमपिवर्वते । वीजं की०, (अर्द्धेन्दुरूपलसितम्) अर्द्धचन्द्राकारेण शोभितम् । की०, (शरदविन्दुशुभ्रम्) शरत्कालीनो य इन्दुश्चन्द्रस्तद्वत् शुभ्रं शुक्लवर्णमित्यर्थः । की०, (अमलम्) निर्म्मलम्, (मकराधिरूढं) मकारारूढं मकरवाहनमित्यर्थः। वरुणस्य मकरवाहनत्वेन तद्वीजस्यापि मकरवाहनत्वमिति सिद्धम्

स्वाधिष्ठानचक्रस्यान्तर्वरुणस्य जलजचक्रं वर्त्तते अस्यैवचक्रस्य मध्ये शरत्कालीनचन्द्रविशदं मकरारूढं वँ वीजमपि विद्यत इतिभावः।

तस्येति- (तस्य) वंकारवीजस्य [अंकदेशकलितः] क्रोडदेशस्थितः [हरिरेवपायात] हरिः विष्णुः एव निश्चयेन पायात् युष्मान् रक्षतु । हरिः की०, (नीलप्रकाशरुचिरश्रियम्) नीलप्रकाशेन नीलवर्णकान्त्या रुचिरा मनोज्ञा या श्रीः शोभा तां (आदधानः) धारयन्सन् नीलवर्णो इति यावत् । की०, (पीताम्बरः) पीतवर्णं अम्बरम् वस्त्रं यस्यतादृशः धृतपीतवस्त्र इत्यर्थः । की०, (प्रथमयौवनगर्व्वधारी) प्रथमं नवीनं यद्यौवनं तस्मात् यो गर्व्वः दर्पः तंद्धारी नवयौवनजन्याहंकारयुक्त इत्यर्थः । की०, (श्रीवत्सकौस्तुभधरः) श्रीवत्सचिन्हं विशेषः कौस्तुभो मणिविशेषः तयोःधरः । की०, (धृतवेदबाहुः) धृतावेदाः चतुः संख्यका बाहवो येन तादृशः चतुर्भुज इत्यर्थः ॥ **स्वाधिष्ठानपद्मस्य वंकारवीजे नीलवर्णो नवयौवनान्वितश्चतुर्भुजो हरिरास्त इतिभावः ॥ २ ॥**

अत्रैवेति- (अत्रैव) वंकारवीजक्रोडदेश एव (सा) प्रसिद्धा (राकिनी) नाम्नी शक्तिः

इस चक्रका ठीक स्थान अनाटमीमें नीचे दिखलाया जाता है

नंबर २

स्वाधिष्ठान चक्र

अर्थात्

(षट्दल पद्म)

HYPOGASTRIC PLEXUS.

१ सुषुम्णा
२ वज्रा
३ चित्रिणी
४ ब्रह्मनाड़ी
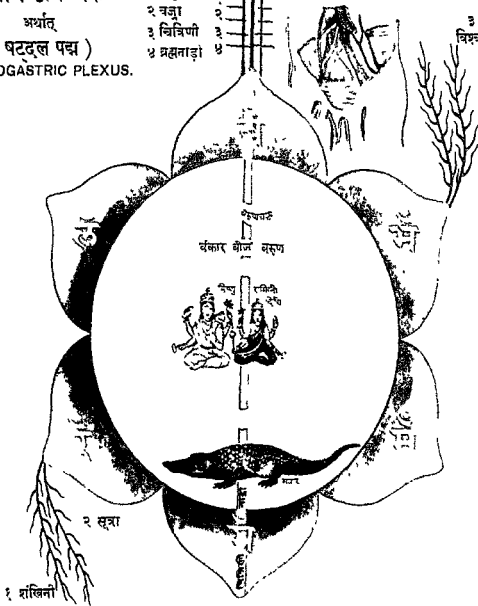
३ ४
चित्रा इवन्निका

वंकार बीज वरुण

विष्णु

राकिनी देवी

मकर

२ सूत्रा

१ शंखिनी

नामचक्र स्वाधिष्ठान	नामतत्व—जल	यंत्र—चंद्राकार
स्थान—पेडू	तत्वबीज—वँ	ध्यानफल—अहंकारादि विकार
दल—षट्	बीजका वाहन—मकर	नाश, योगियोंमें श्रेष्ठ, मोह रहित
वर्ण—सिंदूर	देव—विष्णु	और गद्य पद्यके रचनामें समर्थ
दलोंकेअक्षर—बँ से लँ तक	देवशक्ति—राकिनी	होता है। अंग्रेजी नाम—
		HYPOGASTRIC PLEXUS

The Graphic Arts Co Calcutta.

(खलु) इति निश्चयेन (सततम्) निरन्तरं (भाति) दिप्यते । कीदृशी? (नीलाम्बुजेति) नीलाम्बुजस्य (नीलपद्मस्य उदरमन्तः स्थानं तस्य सहोदरा तत्सदृशी याकान्तिः आभा तया शोभा यस्यास्तादृशी, नीलवर्णेत्यर्थः । पु० की० (नानेति) नाना विविधाः आयुधाः अस्त्राणि येषु तैः [उद्यतकरैः] उत्थितहस्तैः [लसितांगलक्ष्मीः] प्रकाशितांगलक्ष्मीः दीप्तशरीरशोभायस्यास्तादृशी की०, (दिव्येति) दिव्यानि मनोज्ञानि यानिअम्बरानि वस्त्राणि आभरणानि भूषणानिच तैर्भूषिता अलंकृता साचासौ [मत्तचित्ता] मत्तं हर्षविशिष्टं चित्तं यस्याः हृष्टमना इत्यर्थः ॥

अस्मिन्नेव वँकारबीजे नीलवर्णाचतुर्भुजा राकिनी शक्तिरास्त इतिभावार्थः ॥ ४ ॥

स्वाधिष्ठानाख्यमिति-स्वाधिष्ठानपद्मस्य चिन्तनस्यफलमाह- (योमनुज्यः) यः पुरुषः (स्वाधिष्ठानाख्यम्) स्वाधिष्ठाननामकम् (अमलम्) निर्म्मलम् (एतत्) इदम् (सरसिजम्) पद्मं (चिन्तयेत्) ध्यायेत् तस्यमनुष्यस्य (अहंकारेति) अहंकारदोषः आदिर्यस्यतादृशः यः सकलरिपुः अरिषड्वर्गः (तत्क्षणेन] तत्कालेन तस्मिन्नेवसमय इत्यर्थः [क्षीयते] स्वयमेव नश्यति । (सोपि) सः पुरुषोपि [योगीशः) योगिश्रेष्ठः भवतीतिशेषः । अपि पु० [मोहाद्भुततिमिरचयः] मोहोऽज्ञानमेव अद्भुततिमिरचयः अतीव विचित्रान्धकारराशिः तत्र [भानुतुल्यप्रकाशः] भानुतुल्यः सूर्य्यसदृशः प्रकाशो ज्योतिर्यस्यतादृशः सन् (गद्यैः पद्यैः प्रबन्धैः) गद्यपद्यसंदर्भैः [सुधाकाव्यसन्दोहलक्ष्मीम्] अमृतमयकाव्यसमूहशोभां (विरचयति) निबध्नाति ॥ ५ ॥

॥ भाषाटीका ॥

सुषुम्णा नाड़ीके मध्य जो ' चित्रिणी ' उससे ग्रथित, " चतुर्दलपद्म " से ऊपर-ध्वज अर्थात लिंगके मूलमें एक दूसरा पद्म छौ दलका है जिसको (स्वाधिष्ठानचक्र) कहते हैं । यह पद्म सुन्दर कोमल सिंदूर के रंग ऐसा गुलाबी रंग से सुशोभित है, इसके छवों दल पर विद्युत के समान निर्म्मल दमकते हुए " व " से लेकर " ल " तक छवों अक्षर अर्थात् वँ, शँ, षँ, यँ रँ, लँ, अकार और विन्दुके सहित अर्थात् अनुस्वारयुक्त शोभायमान होरहे हैं ॥ १ ॥

उक्त " स्वाधिष्ठानचक्र " के मध्य स्वच्छ निर्म्मल शुक्लवर्ण अम्भोज अर्थात् चन्द्रमण्डलाकार " वरुणचक्र " है, इस वरुणचक्र सम्बन्धी शरदऋतुके चन्द्रमा समान शुक्लवर्ण, निर्म्मल " वँ " वरुणबीज, मस्तकपर अर्धचन्द्र धारण किये हुए, मकरपर आरूढ है अर्थात् वरुणका वाहन मकर है इस कारण उसके बीजका भी वाहन मकरही है ॥ ३ ॥

तिस वंकार वरुणबीजके क्रोड अर्थात् गोदमें श्री विष्णु भगवान् चतुर्भुज नील प्रकाश से प्रकाशित अर्थात् श्यामवर्ण शरीर, अत्यंत सुन्दर, युवा अवस्थासे गर्वित, पीतवस्त्र पहने, हृदयमें श्रीवत्स और कौस्तुभमणि धारण किये, शोभायमान होरहे हैं, ऐसे विष्णु भगवान् सदा आपलोगोंकी रक्षाकरें ॥ ४ ॥

इसीस्थानमें उक्त विष्णु भगवान् के वामभागस्थित निश्चय करके " राकिनी " नाम देवी अर्थात् लक्ष्मी नीले कमलकी कान्ति समान श्यामा नाना प्रकारके श्रेष्ठ शस्त्रोंको चारों भुजाओंमें धारण किये विद्युत समान नानाप्रकारके दिव्य वस्त्र औ आभूषणों से सुशोभित, मत्तचित्त अर्थात् अत्यँत आनन्दचित्त औ प्रसन्न वदन, शोभायमान होरही है ॥ ४ ॥

जो साधक उक्त प्रकार (षट्दलकमल) को नित्य ध्यानकरता है उसके अहँकारादि षड्रिपु उसी क्षण आपसे आप नाश हो जाते हैं और वह योगियों में श्रेष्ठ और अज्ञानतारूप विचित्रमोहांधकार के नाशकरनेमें सूर्य्य समान तेजस्वी होकर गद्य पद्यमें निपुण हो बहुत मीठे काव्योंकी रचना में प्रवीण होजाता है ॥ ५ ॥

॥ इति ॥

अथ दशदलपद्मवर्णनम् ।

तस्योर्ध्वे नाभिमूले दशदललसिते पूर्णमेघप्रकाशे,
नीलाम्भोजप्रकाशैरुपकृतजठरे डादिफान्तैः सचन्द्रैः ।
ध्यायेद्वैश्वानरस्यारुणमिहिरसमं मण्डलं तत्त्रिकोणं,
तद्बाह्ये स्वस्तिकाख्यैस्त्रिभिरभिलसितं तत्रवन्हेः स्वबीजम् ॥ १ ॥
ध्यायेन्मेषाधिरूढं नवतपननिभं वेदबाहूज्ज्वलांगं,
तत्क्रोडेरुद्रदेवो निवसति सततं शुद्धसिंदूररागः ।
भस्मालिप्तांगभूषाभरलसितवपु र्वृद्धरूपी त्रिनेत्रः,
लोकानामिष्टदाता भयलसितकरः सृष्टिसंहारकारी ॥ २ ॥
अत्रास्ते लाकिनीसा सकलशुभकरी वेदबाहूज्ज्वलांगी,
श्यामा पीताम्बराद्यैर्विविधविरचनालंकृता मत्तचित्ता ।
ध्यात्वैवंनाभिपद्मं प्रभवति सुतरां संहृतौ पालनेवा,
वाणीतस्याननाब्जेविलसति सततं ज्ञानसन्दोहलक्ष्मीः ॥ ३ ॥

॥ भाष्यम् ॥

तस्येति— 'तस्य' स्वाधिष्ठानपद्मस्य 'ऊर्ध्वे' उपरिदेशे ' नीलाम्भोजे ' मणिपूरकाख्य-पद्मे ' वैश्वानरस्य ' अग्नेः ' तत्त्रिकोणम् ' तत् प्रसिद्धं त्रिकोणम् त्रिकोणाकारम् ' मण्डलम् ' चक्रं 'ध्यायेत् ' चिन्तयेत् । कीदृशे नीलाम्भोजे ' नाभिमूले ' तुंडीमूलभूते । पु० की०, ' दश-दललसिते ' दशपत्रविशिष्टे । पु० की०, ' पूर्णमेघप्रकाशे ' पूर्णमेघवत् सजलवारिदस्येव प्रकाशो दीप्तिर्यस्यतादृशे । पु० की०, प्रकाशैः प्रकाशवद्भिः शुभ्रैरितियावत्, (सचन्द्रैः) चन्द्रविन्दुसहितैः (डादिफान्तैः) डकारादिफकारान्तवर्णैः ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, इत्येतैर्दशभिर्वर्णैः

(उपकृतजठरे) अलंकृतोदरे । पु० की०, त्रिकोणमण्डलम् [अरुणमिहिरसमम्] अरुणोरक्तवर्णः सचासौमिहिरः सूर्य्यः इति अरुणमिहिर स्तस्यसमम् समानम्, प्रातः कालीन बालसूर्य्यसदृशरक्तवर्णमित्यर्थः । [तद्बाह्ये] तस्य त्रिकोणस्य वाह्ये वहिर्देशे [त्रिभिः] त्रिसंख्यकैः [स्वस्तिकाख्यैः] स्वस्तिकसंज्ञकैर्द्वारैरितिशेषः । [अभिलसितम्] सुशोभितम्, वहिर्देशस्थितद्वारत्रययुक्तं त्रिकोणमित्यर्थः । [तत्र] त्रिकोणमध्ये [वह्नेः] अनलस्य [स्ववीजं] निजवीजं [रँ] ध्यायेत् स्मरेत "परश्लोकेनसहान्वयः" ॥

ध्यायेदिति-(वह्नेः)स्ववीजं कीदृशमित्याह—(मेषाधिरूढम्)मेढ्वाहन मेढ्कासीनमित्यर्थः। पु०की० (नवतपननिभम्) नवोनवीनो यस्तपनः प्रातःकालीनसूर्य्यस्तन्निभं तादृशं प्रातः कालीन सूर्य्यतुल्यमीत्यर्थः । पु०की० [विदवाहूज्ज्वलांगम्] वेदाश्चतुः संख्यका वाहवो यस्यतत वेदबाहु उज्ज्वलानि गौरानि अंगानि अवयवा यस्यतत् उज्ज्वालांगम् वेदबाहूचतत् उज्जवलांगम् ता०। अत्र कर्म्मधारय समासः। [तत्कोडे] तस्य रँ वीजस्यक्रोडे अंकदेशे [रुद्रदेवः] महादेवः (सततं) निरंतरं निवसति तिष्ठति । पुनः की ०, (शुद्धसिंदूररागः) शुद्धं निर्मलम् यत्सिन्दूरं तस्येवरागो लौहित्यं यस्य तादृ० उत्तमसिन्दूरतुल्यरक्तवर्णं इत्यर्थः । की० (भस्मेति) भस्मालिप्तं विभूतिभिरासमन्ताद्भावेन युक्तं यदँगः तस्य या भूषा अलँकरणं तस्या भरः अतिशय आधिक्यमिति यावत् तेनलसितं शोभितं वपुः शरीरं यस्य तादृ० । पुनः की ० (वृद्धरूपी) वृद्धाकारः स्थविर इत्यर्थः । पु० की० [त्रिनेत्रः] त्र्यम्बकः । पु० की० (लोकानामिष्टदाता) लोकानां जनानामिष्टदाता अभिलपितप्रदः । की० (अभयलसितकरः) अभयेन लसितः शोभितः करोयस्य तादृशो मुक्तिप्रद इत्यर्थः । की० (सृष्टि संहारकारी) सृष्टिसंहारौ करोत्येवंशील उद्भवप्रलयकर इत्यर्थः ।

मेषारुढस्य प्रातःकालीनसूर्य्यसमरक्तवर्णस्य चतुर्भुजस्य रँ वीजस्य क्रोडे सिंदूरवर्णो भस्मितसर्वांगःस्थविरो जनाभिलषितप्रदः सृष्टिसंहारकरस्त्र्यम्बको रुद्रदेवो निवसतीति भावार्थः

अत्रेति— (अत्र) त्रिकोणान्तर्गत " रँ " वीजे (सा) प्रसिद्धा (लाकिनी) शक्ति
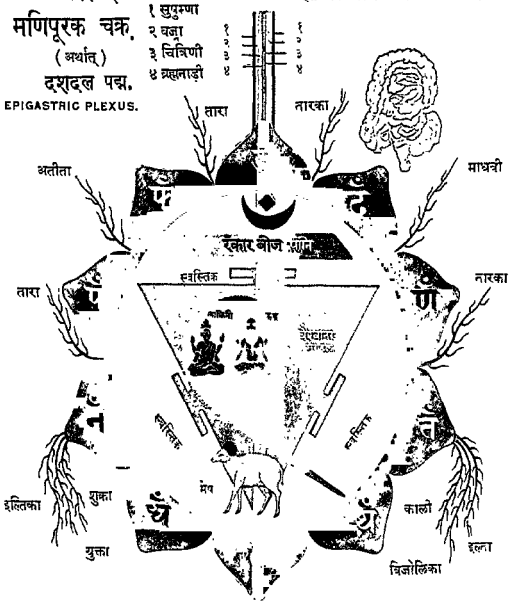
नामचक्र—मणिपूरक
स्थान—नाभि
दल—दश.
वर्ण—नील
दलोंके अक्षर—डँ से फँ तक

नामतत्व—अग्नि
तत्वबीज—रं
बीजका वाहन—मेष
देव—वृद्ध रुद्र
देवशक्ति—लाकिनी

यंत्र—त्रिकोण
ध्यानफल—संहार पालनमें समर्थ और वचन रचनामें चतुर हो जाना है, और उसके जिह्वापर सरस्वती निवास करती है। अंग्रेजी नाम उन नाड़ियोंके समूहका जो इन चक्रोंसे सम्बन्ध रखती हैं—EPIGASTRIC PLEXUS.

The Graphic Arts Co. Calcutta.

न्ते। पु० की० (सकलशुभकरी) सर्वमंगलदायिका। पु०की०, (वेदबाहूज्ज्वलांगी) वेदैश्चतुर्भिर्बाहुभिरुज्ज्वलानि अंगानियस्यास्तादृशी, चतुर्भुजेत्यर्थः। पु०की०, (श्यामा) सुवर्णवर्णा "तप्तकांचनवर्णाभा सा श्यामा परिकीर्तिता"। पु० की०, (पीताम्बराद्यैः) पीतवर्णवस्त्रादिभिर्या (विविधविरचनालंकृता) विविधरचना नानाप्रकारवेषविन्यासः तया अलंकृता भूषिता। पु०की०, (मत्तचित्ता) मत्तंहर्षयुक्तं चित्तं यस्यास्तादृशी॥ रँ बीजे चतुर्भुजा तप्तकांचनवर्णाभा पीताम्बरा लाकिनी शक्तिश्चवर्तत इतिभावार्थः। (ध्यात्वैवं नाभिपद्मम्) एतन्नाभिपद्मं मणिपूराख्यंक पद्मम् ध्यात्वा चिन्तयित्वा (संहर्तौ पालनेवा) जगत्संहारकरणे रक्षणेच (सुतरां प्रभवति) सम्यक् प्रकारेण समर्थोभवति साधक इत्यर्थः। [तस्याननाब्जे] साधकस्य मुखपद्मे (वाणी) सरस्वती (सततं) निरन्तरं (विलसति) विलासं करोति। वाणी की०,(ज्ञानसन्दोहलक्ष्मीः) ज्ञानसमूहस्य लक्ष्मीः शोभा। तज्जनिका इत्यर्थः ॥ ३ ॥

भाषाटीका॥

उक्त "स्वाधिष्ठान" चक्रसे ऊपर नाभीके मूलमें पूर्ण मेघके समान नीलवर्ण प्रकाशित दशदलका कमल है जिसको "मणिपूरकपद्म" कहते हैं और इसकी दशों पत्तियों पर ड से फ तक दशअक्षर अर्थात् डँ, ढँ, णँ, तँ, थँ, दँ, धँ, नँ, पँ, फँ, चन्द्र औ विन्दुके सहित शोभायमान होरहे हैं, इन दसों दलोंसे जठर अर्थात् पेट अलंकृत है, इस चक्रके मध्यमें "वैश्वानर" देवताका त्रिकोणमंडल बालसूर्य्यके समान लालवर्ण ध्यान करना चाहिये, इस "त्रिकोणयन्त्रके" बाहर "स्वस्तिक" नाम करके तीनद्वार लगे हैं, फिर इसी त्रिकोणयन्त्रके बीच वह्निदेवताको (रँ) बीजको भी प्रातःकालीन बालसूर्य्यके समान लालवर्ण दमकताहुआ ध्यानकरनाचाहिये॥ १॥

फिर यह "रँ" बीज अति स्वच्छस्वरुप चारभुजा धारणकिये शोभायमान होरहा है, जिसकेक्रोड [गोद]में सिंदूरके समान लोहितवर्ण, वृद्धरूपी त्रिनेत्र, भस्मभूषित अंग, नाना प्रकार अलंकारयुक्त, एक हस्तसे संसार निवासियोंको वांछितफल देतेहुए और दूसरे हस्तसे अभयदान करतेहुए, सृष्टि, संहार में समर्थ रुद्ररूप शिव निवास कररहे हैं। एवम् प्रकार ध्यान करना चाहिये॥ २॥

उक्त शिवके समीप "लाकिनी" नाम्नी देवी सर्वप्रकार मंगलकी करनेवाली, चतुर्भुजी, निर्म्मल अंग, अति प्रकाशमान, श्यामा अर्थात् स्वर्णवर्ण पीताम्बर धारण किये, विविध प्रकारके

भूषणोंसे भूषित, आनन्दसे मत्तचित्त अर्थात् प्रसन्नचित्त, वर्त्तमान होरही है । अब आगे श्लोक करके इस पद्मका ध्यानफल कहते हैं । अर्थात् जो साधक उक्त प्रकार दशदल पद्मके मध्य वैश्वानर देवताके त्रिकोणमंडल स्थित " रँ " वह्निबीजके क्रोड़ (गोद) में "रुद्र" रूप शिवको "लाकिनी" नाम देवीके सहित ध्यान करता है, वह भी संहार पालनमें समर्थ होजाता है और ज्ञान प्रकाश करनेवाली बानी उसके मुखकमलमें विलास करती है ॥ ३ ॥

॥ इति ॥

अथ द्वादशदलपद्मवर्णनम् ।

तस्योर्ध्वे हृदिपङ्कजं सुललितं वन्धूककान्त्युज्ज्वलं, काद्यैः द्वादशवर्णकैरुपहृतं सिन्दूररागान्वितैः । नाम्नानाहतसंज्ञकं सुरतरुं वांछातिरिक्तप्रदं, वायोर्मण्डलमत्र धूमसदृशं षट्कोण शोभान्वितम् ॥ १ ॥ तन्मध्ये पवनाक्षरंच मधुरं धूमावलीधूसरं, ध्यायेत्पाणिचतुष्टयेन लसितं कृष्णाधिरूढं परं । तन्मध्ये करुणानिधान ममलं हंसाभमीशाभिधं, पाणिभ्यामभयं वरंच ददतं लोकत्रयाणामपि ॥ २ ॥ अत्रास्ते खलु काकिनी नवतडित्पीता त्रिनेत्रा शुभा, सर्व्वालंकरणान्विता हितकरी योगान्वितानां मुदा । हस्तैः पाशकपालशोभनवरान् संबिभ्रती चाभयं, मत्ता पूर्णसुधारसार्द्रहृदया कङ्कालमालाधरा ॥३॥ एतन्नीरजकर्णिकान्तरलसच्छक्तिस्त्रिकोणाभिधा, विद्युत्कोटिसमानकोमलवपुः सास्ते तदन्तर्गता: ।वाणाख्यःशिवलिंगकोऽपि कनकाकारांगरागोज्वलः, मौलौ सूक्ष्मविभेदयुङ्मणिरिव प्रोल्लासलक्ष्म्यालयः॥४॥ ध्यायेद्यो हृदिपंकजं सुरतरुं शर्व्वस्यपीठालयं, देवस्यानिलहीनदीपकलिका हंसेनसंशोभितम् ।भानोर्मण्डलमण्डितान्तरलसत् किंजल्कशोभाधरं, वाचामीश्वर ईश्वरोपि जगतीरक्षाविनाशक्षमः॥५॥योगीशोभवति प्रियात्प्रियतमः कान्ताकुलस्यानिशं, ज्ञानीशोऽपि कृती जितेन्द्रियगणोध्यानावधाने क्षमः । गद्यैः पद्यपदादिभिश्च सततं काव्याम्बुधारावहः, लक्ष्मीरञ्जन दैवतं परपुरे शक्तः प्रवेष्टुं क्षणात् ॥६॥

तस्येति-(तस्य)नाभिपद्मस्य ऊर्ध्वे उपरिदेशे (हृदि] हृदयमध्ये [नाम्नानाहतसंज्ञकम्] संज्ञया अनाहताख्यं पंकजं पद्मं चिन्तयेदितिशेषः। कीदृशं? [सुललितम्] मनोहरम्, [बंधूककान्त्युज्ज्वलम्]

वंधूकं माध्याह्निकपुष्पं तसच याकान्तिस्तद्वदुज्ज्वलं वंधूकपुष्पमिवरक्तवर्णमित्यर्थः । पु० की०, (काद्यैः) ककारादि ठकारान्तैः क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, इत्येतैः (द्वादशवर्णैकैरुपह्नम्) द्वादशसंख्यकैरेतैरत्तौर्युक्तम्, कीदृशै द्वादश वर्णकैः, [सिन्दुरराग न्वितैः] सिन्दूरस्ययोरागः रक्तिमा तेनान्वितै र्युक्तैः, सिन्दूरसदृशरक्तवर्णैरित्यर्थः । पु० की०; [सुरतरुम्] कल्पवृक्षं तत्सदृशमित्यर्थः 'देववृक्षो' भक्तजनमनोभिलषितमेव ददाति तस्मादप्यस्याधिकत्वबोधनाय विशेषणमाह(वांछातिरिक्तमदम्) वांछाया अतिरिक्त मधिकं मददाति वितरतीति वांछातिरिक्तमदम् । वांछायायदधिकं तदपि ददातीत्यर्थः । यद्वा वांछाया अतिरिक्तं अधिकम् यस्मादधिकं वांछितं नास्ति मोक्षमितियावत् तत्पदम् मुक्तिपदमित्यर्थः । अत्र अस्मिन् अनाहतपद्मे [षट्कोणशोभान्वितम्] षट्कोणाकारं वायोर्मण्डलं मरुच्चकं चिन्तयेदितिशेषः । मण्डलं की० [धूम्रसदृशम्] धूम्रवर्णम् ॥

दशदलपद्मोपरि हृद्देशस्थस्य वंधूकपुष्पतुल्य रक्तवर्णस्य सिंदूरवर्णककारादिठान्तद्वादशाक्षरविशिष्टद्वादशपत्रयुक्तस्य अनाहतपद्मस्यमध्ये षट्कोणाकारं धूम्रवर्णं वायुमण्डलं वर्त्तत इतिभावः ॥ १ ॥

तन्मध्यइति— (तन्मध्ये) तस्य वायुमण्डलस्यमध्येऽन्तः (पवनाक्षरम्) "यँ" बीजंध्यायेत् । कीदृशम्? (मधुरम्) माधुर्य्यविशिष्टम् । की०, (धूमावली धूसरम्) धूमपंक्तिस्तद्वद् धूसरम् ईषत्पाण्डुवर्णम् धूमसमूहसदृशाल्पश्वेतपीतमिश्रितश्यामवर्णमित्यर्थः । की०, (पाणिचतुष्टयेन लसितं) चतुःसंख्यकहस्तेनयुक्तं चतुर्भुजमित्यर्थः । की०, (कृष्णाधिरूढम्) कृष्णसारवाहनम् । अत्रापि बीजस्य हस्तवत्ता वाहनवत्ताच पूर्ववदुन्नेया । की०, (परम्) श्रेष्ठम् । (तन्मध्ये) तस्य 'यँ' रूप वायु बीजस्य मध्ये (करुणानिधानम्) करुणामयम् (अमलं) निर्म्मलं (हंसाभं) शुक्लवर्णम् (इशाभिधम्) ईशाननामानम् शिवं चिन्तयेदितिशेषः । की०, (लोकत्रयाणामपि) स्वर्गमर्त्यपातालस्थजनानामपि (अभयम्) मुक्तिम् (वरम्) लोकनाभिष्टंच [ददतं] वितरन्तम् ॥

वायुमण्डलस्यचमध्ये धूम्रवर्णं चतुर्हस्तं कृष्णमृगवाहनं यँ बीजं ध्यायेत् तन्मध्येऽपि शुक्लवर्णं लोकानामभयं वरंच पाणिभ्यान्ददतम् ईशाननामानं शिवं चिन्तयेत् ॥ २ ॥

अत्रेति- (अत्र) यँ वीजे ईशाननामशिवसन्निधौ वा (खलु) निश्चयेन [काकिनी) शक्तिरास्ते तिष्ठति । की०, (नवतडित्पीता) निर्म्मल विद्युदिव पीतवर्णा । की०, (त्रिनेत्रा) त्र्यम्बका (शुभा) मंगलदायिका । की०, (सर्व्वालंकरणान्विता) समस्तभूषणयुक्ता । की०, [योगान्वितानाम्] योगाभ्यासिनां [मुदा] हर्षेण हितकरी कल्याणकारिणी । की०, (हस्तैः) चतुर्भिः करैः (पाशकपालशोभनवरान्) पाशः शस्त्रविशेषः, कपालः मुण्डः, शोभनवरः शुभेष्टः (अभयंच) मुक्तिंच (संविभ्रती) सँधारयन्ती । की०, (मत्ता) हृष्टा । की०, (पूर्णसुधारसार्द्रहृदया) पूर्णेन सुधारसेन आर्द्रं सिक्तं हृदयं यस्यास्तादृशी । अमृतमय हृदयेत्यर्थः । की०, (कंकालमालाधरा) अस्थिस्रग्धारिणी ॥

अत्र यँवीजेचतुर्हस्ताविद्युदाकारा त्रिनेत्रा काकिनीशक्तिश्चवर्त्तते ॥३॥

एतदिति— (एतन्नीरजकर्णिकान्तरलसत्शक्तिः) एतन्नीरजस्य अनाहतपद्मस्य कर्णिकान्तरे वीजकोशमध्ये लसन्ती दीप्यमाना काचित् शक्तिरास्त इतिशेषः । की०, (त्रिकोणाभिधा) त्रिकोणाख्या । अनाहतपद्मकर्णिकामध्ये त्रिकोणाभिधेया शक्ति र्वर्तत इत्यर्थः । (तदन्तर्गता) तस्याः त्रिकोणाभिधायाः शक्त्या अन्तर्गता मध्यस्थिता (सा) प्रसिद्धा शक्तिरास्ते । की०, (विद्युत्कोटिसमानकोमलवपुः) चपलाशतसहस्रसदृशं कोमलं सुन्दरं वपुः शरीरं यस्यास्तादृशी । (बाणाख्यः शिवलिंगकोपि) बाणनामा लिंगाकारशिवोऽपि आस्ते । न केवला प्रसिद्धाशक्तिस्तदन्तर्गता किन्तुबाणाख्यः शिवलिंगकोपि तदन्तर्गत इतिपरमार्थः । की०, बाणनामा शिवः [कनकाकारांगरागोज्ज्वलः] कनकाकारः स्वर्णवर्णसदृशः योऽङ्गरागः कुमकुमादि स्तेन उज्ज्वलो दीप्तिविशिष्टः । यस्य (मौलौ) मस्तके [सूक्ष्मविभेदयुक्] सूक्ष्मरंध्र सम्बन्धी (प्रोल्लासलक्ष्म्यालयः) प्रकर्षेण उल्लासविशिष्टायालक्ष्मीः विष्णुशक्तिः तस्या आलयः स्थानं अष्टदलपद्मम् [मणिरिव] रत्नमिव राजत इतिशेषः ॥

द्वादशदलपद्मकर्णिकान्तर्गताया स्त्रिकोणाभिधायाः शक्त्या अन्तःस्थिता विद्युदाकारा काचित्प्रसिद्धाशक्तिः तप्तकांचनवर्णो बाणनामा लिंगाकारशिवोप्यास्ते तस्य तु बाणनाम्नः शिवस्यशिरसि मणिरिव

सूक्ष्मरन्ध्रानुयोगि लक्ष्म्यालयभूतमष्टदलपद्मं वर्तत इतिभावार्थः ।४।

ध्यायेदिति— [यः] जनः एवम्भूतं (पंकजम्) अनाहतपद्मं (हृदि)मनसि [ध्यायेत्] चिन्तयेत्] सजनः [वाचामी श्वरः] वाचस्पतिर्बृहस्पति तुल्यो भवतीत्यर्थः । सजनः(ईश्वरोऽपि) हरसदृशोपि सन् [जगतीरक्षाविनाशक्षमः] जगतीनां स्वर्गमर्त्यपातालानां रक्षणे पालने नाशने संहारकरणेच क्षमः समर्थो भवति । पंकजं की०, (सुरतरुम्)कल्पवृक्ष तुल्यं साधकानामभिष्टसम्पादकत्वादितिभावः । की०, [देवस्य] क्रीडनशीलस्य [सर्वस्य] शिवस्य (पीठालयम्) निवासस्थानम् । की०,[अनिलहीनदीपकलिकाहस्तेन] वायुरहितदीपशिखाकार [हंसेन] जीवात्मना (संशोभितम्)युक्तम् की०, [भानोर्मण्डलेति] भानोः सूर्य्यस्य मण्डलेन मण्डितं भूषितं यदन्तरं मध्यस्थानं तत्र लसत् दीप्यमानं यत् (किंजल्कं) केसरं तस्य (शोभाधरम्) शोभायुक्तम् ॥ ५ ॥

योगीश इति—"योजन एतत्पद्मध्यायेदिति पूर्वेणान्वयः" सजनः [योगीशो भवति] योगिश्रेष्ठोभवति । [अनिशम्] निरन्तरं (कान्ताकुलस्य) योषिल्लोकस्य [प्रियात्] स्वामिनः [प्रियतमः] अतिशयेन प्रीतकरो भवति। [ज्ञानीशोऽपि] ज्ञानिश्रेष्ठश्च भवति । की०, [कृती) कतज्ञः। की०! [जितेन्द्रियगणः]वशीकृत इन्द्रियगण इन्द्रियसमूहो येन ता० । की०! (ध्यानावधानेक्षमः) अत्यन्तैकाग्रतया ध्यानकरणे समर्थः । की०, (गद्यैः] वाक्यावलिप्रबन्धैः [पद्यपदादिभिश्च] श्लोकचरणादिश्च करणभूतैः (सततम्) निरन्तरम् [काव्याम्बुधारावहः) काव्यं रसात्मकं वाक्यं तदेव अम्बु तस्य धारावहः धारास्रदम् विलक्षणकविर्भवतीत्यर्थः । की०, [लक्ष्मीरंजनदैवतम्] लक्ष्म्यारंजनमनुरागोयस्य ता० च [तद्दैवतम्] नारायणस्तत्तुल्यः सन् [क्षणात्] तत्क्षणात [परपुरे]परशरीरे [प्रवेष्टुम्] प्रवेशं कर्तुम् [शक्तः] समर्थो भवतीति शेषः ॥ ६ ॥

॥ भाषाटीका ॥

उक्त 'मणिपूरक' पद्मसे ऊपर हृदयमें अति सुन्दर बन्धूक पुष्पके समान लाल वर्ण द्वादशदलका एक कमलहै, जिसकी बारहों पत्तियों पर 'क' से 'ठ' तक अर्थात् कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं ये बारह अक्षर सिन्दूर वर्ण शोभायमान होरहे हैं, इसी पद्म का नाम "अनाहतचक्र" है, जो कल्पवृक्षके समान फलदायक है, वरु कल्पवृक्षसे बढ़कर बांछासे अधिक फलका
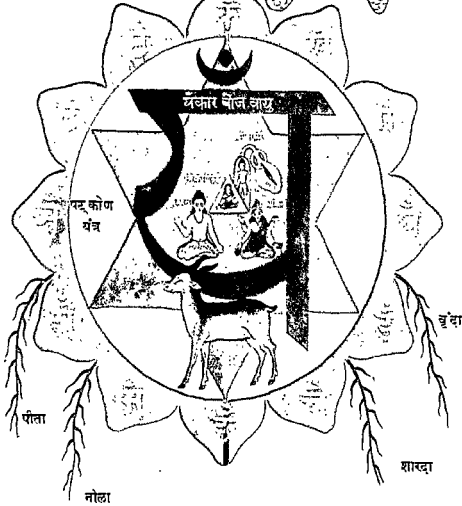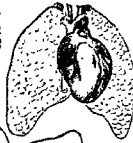
नामचक —अनाहत
स्थान—हृदयम्
दल – द्वादश
वर्ण—अरुण
दलोंके अक्षर – कँ से ठँ तक

नाम तत्व—वायु
तत्व बीज—यँ
बीजका वाहन —मृग
देव—ईशान
देवशक्ति - काकिनी

यंत्र —षट् कोण
ध्यानफल—वचन रचनामे समर्थ, ईशत्वसिद्धिप्राप्त, योगीश्वरज्ञानवान, इंद्रियजित, काव्य शक्तिवाला होता है और परकाया प्रवेश करनेको समर्थ होता है। अँग्रेजी नाम उन नाड़ियोंके समूहका जो इन चक्रोंसे सम्बन्ध रखती हैं—CARDIAC PLEXUS.

The Graphic Arts Co. Calcutta.

देनेवाला है अथवा जिस वांछासे अधिक कोई वांछा नहीं ऐसी जो मुक्ति तिसको देनेवाला है, इसके मध्य 'षट्कोण' धूम्रवर्ण वायुका मण्डल शोभायमान होरहा है ॥ १ ॥

उक्त 'षट्कोण' वायुमण्डलके मध्य अत्यन्त श्रेष्ठ, मधुरमूर्त्ति, धूम्रवर्ण, चतुर्भुजी मृगा* पर सवार "यँ" वायु बीज है जिस बीजके मध्यं हंसवर्ण अर्थात् शुक्लवर्ण 'द्विभुज ईशान' नाम शिव तीनों लोकोंको अर्थात् स्वर्ग मर्त पाताल निवासियोंको एक हस्तसे अभयपद अर्थात् मुक्ति और दूसरे हस्तसे औरभी नानाप्रकारके वरदान देते हुये वर्तमान हैं। साधकोंको योगसिद्धि निमित्त इस स्थान में ऐसाही ध्यान करना चाहिये ॥ २ ॥

उक्त "यँ" बीजके मध्य ईशान नाम शिवके समीप, (काकिनी) नाम देवी नवीनविद्युतके समान पीतवर्णा तीननेत्रवाली सर्वप्रकार कल्याण दायिनी विविध अलंकारयुक्त हर्षपूर्वक योगियोंकी हितकरनेवाली, हर्षितचित्त, अमृतमयहृदय, चारों भुजाओंमें पाश, कपाल, सुन्दर वर, अभय और गलेमें हाड्की माला धारणकिये वर्तमान होरही है ॥३॥

उक्त 'अनाहतपद्मकी' कर्णिकामें 'त्रिकोणा' नामकी शक्ति शोभायमान होरहीहै! तिसके मध्य कोटि विद्युत समान सुन्दरशरीर तीननेत्र वाली एक 'प्रसिधा' शक्ति निवास करती है' जिसके साथ 'वाणाख्य'नाम द्विभुज शिवलिंग स्वर्णके समान कुमकुमसे शोभित अंग विराजमान है, जिसके मस्तकपर एक छिद्र *है इस छिद्रकेसाथ मणिके समान जगमगाताहुआ लक्ष्मीका उत्तमस्थान अर्थात् अष्टदल-कमल है॥४॥जो प्राणी उक्त कमल अर्थात् "अनाहतचक्र"को हृदयमें ध्यान करता है वह बृहस्पतिके तुल्य वचनरचनामें अत्यन्तचतुर होजाताहै और ईश्वरके समान तीनोंलोकोंकी सृष्टि, संहार और पालनकरनेमें समर्थ होताहै; अर्थात् ईशत्वसिद्धि उसे प्राप्तहोतीहै। यह कमलकैसाहै, कि 'सुरतरु' अर्थात कल्पवृक्षके समान सर्वप्रकारकी कामनाओंका पूर्णकरने वालाहै और 'शर्व' अर्थात् शिवका-निवासस्थान है, फिर वायुहीन दीपशिखाके समान 'हंस' अर्थात् जीवात्मा करके सुशोभित है और भानुमण्डलसे मण्डित है। तिस भानु मण्डलके मध्य इसके 'किंजल्क' अर्थात् केसरकी शोभा अत्यन्त कमनीय है॥ ५ ॥

फिर इसकाध्यान करनेवाला योगियोंमें श्रेष्ठ ऐसासुन्दर स्वरुप होजाता है, कि कामिनियां-अपने २ पतिके रहते भी उसे प्राणसे अधिक प्यार करतीं हैं, फिर ज्ञानिशिरोमणि, कृतज्ञ, जिते-

* वायुका वाहन मृगा है इसलिये उसके बीजका भी वाहन मृगा है।

न्द्रिय अत्यन्त शान्तिके साथ ध्यान धारणामें कुशल, गद्य पद्य रचनामें प्रवीण अर्थात् उत्तम कवि, काव्यधारा अर्थात् कवितारूपी अमृतधाराका बहानेवाला होताहै। फिर लक्ष्मीके संग जो विलास करनेवाले नारायण तिनके तुल्य होकर क्षणमात्र में अपने शरीरसे दूसरे शरीरमें प्रवेशकरजानेमें समर्थहोजाता है। उक्त कमलसे बायींओर बाणाख्यके छिद्र सम्बन्धी जो गुप्तरूपसे एक 'अष्टदलकमल'है उसके ध्यानका भी उक्तप्रकारही फल है ॥६॥

॥ इति ॥

अथ षोड़शदलपद्मवर्णनम् ।

विशुद्धाख्यं कण्ठे सरसिज ममलं धूम्रधूम्राभ भासं, स्वरैः सर्वैः शोणैर्दलपरिलसितैर्दीपितं दीप्तियुक्तं ॥ समास्ते पूर्णेन्दु प्रथिततम-नभोमण्डलं वृत्तरूपं, हिमच्छायानागोपरिलसिततनोः शुक्लवर्णाम्बरस्य ॥१ ॥ भुजैः पाशाभीत्यङ्कुशवरलसितैः शोभितांगस्य तस्य, मनो रङ्के नित्यं निवसतिगिरजाभिन्नदेहो हिमाभः॥ त्रिनेत्रः पंचास्योल-सितदशभुजो व्याघ्रचर्म्माम्बराढ्यः, सदापूर्व्वोदेवः शिव इति समाख्यानसिद्धप्रसिद्धः ॥ २ ॥ सुधासिन्धोः शुद्धा निवसति कमले शाकिनी पीतवस्त्रा, शरंचापंपाशं शृणिमपि दधति हस्तपद्मैश्चतुर्भिः ॥ सुधांशोः सम्पूर्णं शशपरिरहितं मण्डलँ कर्णिकायाम्, महामोक्षद्वारँ श्रीयमभिमतशीलस्य शुद्धेन्द्रियस्य ॥ ३॥ इहस्थाने चित्तं निरवधि निधायात्तपवनो, यदि क्रुद्धोयोगी चलयती समस्तँ त्रिभुवनँ ॥ नच ब्रह्मा विष्णुर्नच हरिहरो नैव खमणि स्तदीयँसामर्थ्यं शमयितुमलँ नापि गणपः ॥ ४ ॥ इहस्थाने चित्तं दिनलमधिनिधायात्तसम्पूर्ण-योगः, कविर्वाग्मी ज्ञानी स भवति निरतां साधकः शान्तचेताः ॥ त्रिलोकानांदर्शी सकलहितकरो रोगशोकप्रमुक्तः, चिरँजीवी जीवी निरवधि विपदां ध्वंसहंसप्रकाशः ॥ ५ ॥

॥भाष्यम्॥

विशुद्धाख्यमिति— (मुग्मम्) (कण्ठे) गलदेशे (विशुद्धाख्यंसरसिजम्)पद्मं चिन्तयेदितिशेषः । की० (अमलम्) निर्म्मलम् । की० [धूम्रधूम्राभभासम्] अतिशयधूम्रवर्णः भासः दी-

सिर्गस्य ता० । की० (दलपरिलसितैः) षोडशपत्रोपरिस्थितैः (शोणैः) रक्तवर्णैः (सर्वैः स्वरैः) अ, आ, इत्यादि षोडसभिर्वर्णैः (दीपितम्) प्रकाशितमित्यर्थः । तस्मिन् पद्मे (पूर्णेंदुप्रथिततम नभोमण्डलम्) पूर्णे चन्द्रेण प्रथिततमम् अतिशयेन प्रसृतं विश्रुतम वा नभोमण्डलम् आकाशमण्डलम् (समास्ते) सम्यग्वर्तते । की०, [वृत्तरूपम्] वर्तुलाकारम् । ०की, (दीप्तियुक्तम्) कान्तियुक्तम् । (तस्य) प्रसिद्धस्य (मनोः) हँ रूपआकाशवीजस्य [अंके] क्रोडे (शिवइति) देवः (नित्यम्) सततम (निवसति) तिष्ठति । (मनोः) कीदृशस्य [हिमच्छाया नागोपरिलसिततनोः] हिमच्छायया हिमसदृशकांत्या नागोपरिलसिता हस्त्युपरि प्रकाशिता दीपिता तद्धः शरीरम् यस्य ता० । नागोपरिस्थितहिमवर्णस्य की०! (शुक्लवर्णाम्बरस्य) शुक्लवर्णाम्बरं वस्त्रं यस्य तादृशस्य (शोभाढ्य०) तल्लक्षणम् रसैरश्वैरश्वैर्यमननततैर्गेन शोभेयमुक्ता । पु० कीदृशस्य [भुजैश्चतुर्हस्तैः शोभितांगस्य] शोभितमंगं यस्य तादृशस्य चतुर्भुजस्येत्यर्थः । भुजैः की० (पाशाभीत्यंकुशवरलसितैः) पाशश्च, अभितिश्च, अंकुशश्च, वरश्च, पाशाभीत्यंकुशवरास्तैः लसितैः शोभितैः । पाशादिचतुष्टयविशिष्टचतुर्हस्तयुक्तैरित्यर्थः । देवः । कीदृशः! (गिरिजाभिन्नदेहः) गिरिजायाः पार्वत्या अभिन्नमनतिरिक्तं शरीरं यस्य तादृशः, गिरिजार्द्धांगविशिष्टशरीर इत्यर्थः । पुनः की०, (हिमाभः) शुक्लवर्णः । पुनः की०, (त्रिनेत्रः) त्र्यम्बकः । पुनः की०, [पंचास्यः] पंचमुखः । पुनः की०, (लसितदशभुजः) लसिता दीपिताः मनोरमा इतियावत् दशभुजा दश हस्ता यस्य तादृशः दशहस्तविशिष्ट इत्यर्थः । पुनः की०, [व्याघ्रचर्म्माम्बराढ्यः]व्याघ्रचर्म्म व्याघ्राजिनम् अम्बरं वस्त्रं तेनआढ्यः युक्तः परिधानीकृतव्याघ्रचर्म्मेत्यर्थः। पुनः की०, (शिवइति सुसमाख्यानसिद्धप्रसिद्धः) शिवइति सुसमाख्यानम् सुन्दराभिधानं तेन सिद्धानां देवयोनिविशेषाणां (प्रसिद्धः) ख्यातः । शिवोदेवः की०, (सदा) इति पूर्व्वं यस्य तादृशः सदाशिव इति यावत् ॥ १, २॥

कण्ठदेशे षोड़शदलस्थितषोड़शस्वरवर्णयुक्तं निर्म्मलं विशुद्धाख्यपद्मं वर्त्तते। तदन्तः पूर्णेन्दुयुक्तं वर्तुलाकारं नभोमण्डलं वर्तते। तन्मध्ये नागोपरिस्थितशुक्लवर्णचतुर्भुज "हँ" वीजस्य क्रोड़े गिरिजार्द्धाङ्गः पंचास्यः शुक्लवर्णः व्याघ्रचर्म्माम्बराढ्यः सदाशिवो निवसतीतिभावः ॥१, २॥

सुधेति— (सुधासिन्धौ) पीयूषाश्रये (कमले) विशुधाख्यपद्मे (शाकिनीनाम्नी) शक्तिर्निवसति [तिष्ठति]। शाकिनी की० (शुद्धा) निर्म्मला। की०, (पीतवस्त्रा) पीताम्बरा। की०, (चतुर्भिर्हस्तपद्मैः) चतुस्संख्यकैः करकमलैः [शरं] बाणं [चापम्] धनुः [पाशम्] शस्त्रविशेषं (सृणिमपि) अंकुशं च [दधती] धारयन्ती बाणधनुष्पाशांकुशविशिष्टचतुर्भुजेत्यर्थः। [कर्णिकाधाम] विशुद्धाख्यपद्मस्य कर्णिकायां (सुधांशोश्चन्द्रस्य सम्पूर्णं मण्डलं) षोडशकलायुक्तं चक्रं वर्तते। कीदृशम् (शशपरिरहितम्) शशरूप कलंकहीनम्। पु०की०, (श्रियमभिमतशीलस्य) लक्ष्म्याभिलाषिनः शुद्धेन्द्रियस्य (महामोक्षद्वारम्)महामोक्षो निर्वाणः तस्यद्वारं वर्त्म॥

पुनःतस्मिन्कमले विशुद्धाख्ये पीतवस्त्रा चतुर्भुजा शाकिनी शक्ति स्तिष्ठति, तत्कर्णिकायां योगिजनस्य महामोक्षद्वारं कलंकरहितं पूर्णचन्द्रमण्डलमास्तेतिभावः॥ ३ ॥

इहस्थानइति— (इहस्थाने) विशुद्धाख्यपद्मे (निरवधि) निर्नास्ति अवधिर्मर्य्यादा यस्मिन्कर्म्मणि तद्यथा तथा भवतीति यावत् सततमित्यर्थः। (चित्तं निधाय) मनः सम्बध्य, (आत्तश्वसनः) गृहीतप्राणः सन् कुम्भकं कृत्वेति यावत्। (योगी) योगाभ्यासी योगिजनो यदि (क्रुद्धः) कुपितः स्यात् तर्हि (समस्तं त्रिभुवनं) त्रैलोक्यम्(चलयति) कम्पयति। (तदीयं) तरयं योगिजनस्य इदं त्रिभुवनचालनरूपं सामर्थ्यं (शमयितुम्) शान्तयितुम् (अलं) समर्थः न भवतीतिशेषः। कः समर्थो न भवतीत्याह। (नच ब्रह्मा) नैव सृष्टिकर्त्ता (नच विष्णुः) नहि पालनकर्त्ता (नच हरि हरः) नैव हरिहरात्मक ईश्वरः (नैव खमणिः) नहि सूर्य्यः (नापि गणपः) गणेशोऽपि न॥ ४॥

इहस्थानइति— (इहस्थाने) विशुद्धाख्यपद्मे यो (विमलं) स्वच्छं (चित्तं) मनः (अधिनिधाय) सँस्थाप्य (आत्तसँपूर्णयोगः) गृहीत सम्पूर्ण योगाँगः स साधकः योगाभ्यासी कविः काव्यकर्त्ता भवति। की०, (वाग्मी) उत्तमवक्ता। की०, (ज्ञानी) प्रशस्त ज्ञानवान् की०, (नितरां शान्तचेता) अत्यन्त शान्तं वशीभूतं चेतः चित्तं यस्य ता० वशीकृतमनस्क इत्यर्थः की०, (त्रिलोकानांदर्शी) त्रिलोकद्रष्टाभवती। की०, (सकलहितकरः) सर्व प्राणिक-

ल्याणकर; । की०, (रोगशोकप्रमुक्तः) सकलामयक्लेशाभ्यां रहितः । स [जीवी] प्राणी (चिरंजी-वी) दीर्घायुः । की० [निरवधि] निर्मर्य्यादम् [विपदां] विपत्तिनां [ध्वंसे हंसप्रकाशः] ना-शकरणे हँसस्य सूर्य्यस्येव प्रकाशोयस्य तां० । विपन्नाशको भवतीत्यर्थः ॥ ५ ॥

भाषाटीका॥

१, २, श्लोकोंका टीका एकसाथ कीयाजाताहै । पूर्वोक्त कमलसे ऊपर कण्ठ के मध्यमें षोडशदलका एक कमल निर्म्मल धूम्रवर्णकाहै, जिसके सोलहों पत्तियों पर (अ) से [अः] तक सोलहों स्वर अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ अँ, अः, रक्तवर्ण शोभायमान होरहे हैं, इसीको "विशुद्धाख्यचक्र" कहते हैं, इसकमलके मध्य गोलाकार आकाश मँडल अर्थात् शून्यचक्र पूर्णचन्द्र के प्रकाश से भराहुआ शोभायमान हो रहाहै, इसी स्थान में हस्तीपर सवार "हँ" आकाशबीज शुक्लवर्ण चतुर्भुजीरूप से शुक्लवस्त्र धारणकिये वर्त्तमान है जिस-की चारों भुजाओंमें पाश, अभीति, अँकुश और वर ये चारोंपदार्थ शोभायमानहोरहे हैं। इस (हँकार) आकाशबीजके कोड (गोद) में अर्द्धांग अर्थात् हरगौर्य्याख्य श्री सदाशिव हिम समान उज्ज्वल अंग, सिद्धोंमें प्रसिद्ध, त्रिनेत्र, पंचमुख, दशभुज, व्याघ्र चर्मको अम्बर समान कटिमें धारण किये वर्त्तमान हैं, जो सदा अपने भक्तोंको नाना प्रकारके कल्याण औ सिद्धि देनेमें समर्थ हैं ॥ १,२

इस अमृत भरे कमलके मध्य श्री 'सदाशिवके' समीप पीतवस्त्र पहने चारों भुजाओंमें शर, चाप, पाश, और अंकुश धारणकिये निर्म्मल शुक्ल वर्ण 'शाकिनी' नाम देवी निवास करती है फिर इसी कमलकी कर्णिकामें कलंकरहित षोड़शकलायुक्त पूर्ण चन्द्रमण्डल, शोभायमान होरहाहै जो सकल श्री वा पराक्रमके अभिलाषी जितेन्द्रिय पुरुषोंके महामोक्षका द्वार है ॥ ३ ॥

जो साधक प्रतिक्षण इस स्थानमें मनलगाये अर्थात् चित्तवृत्तिको निरोधकिये वायुको ग्रहण करताहुआ अर्थात पूरक * करताहुआ योगमें प्रवृत्त होताहै, वह योगी यदि क्रोधकरे तो समस्त त्रिभुवनको चलायमान + करदे और उसके इस क्रोधको ब्रह्मा' विष्णु' हरिहर' सूर्य्य' गणेश' कोइ शमन करनेको समर्थ न होवे ॥ ४॥

---

* इसी स्थानसे पूरक समय वायुको ब्रह्मरन्ध्रकी ओर लेजाना चाहिये (गुरु द्वारा सीखो)

+ जैसे विश्वामित्र ।

नामचक्र—विशुद्धाख्य	तत्ववोज—हँ	ध्यानफल—काव्य रचनामें समर्थ ज्ञानवान
स्थान—कण्ठ	वीजका वाहन—हस्ती	उत्तम वक्ता शांत चित्त त्रिलोकदर्शी सर्व हित-
दल—षोडश	देव—पञ्चवक्त्र	कारी आरोग्य चिरजीवी और तेजस्वी होता है।
वर्ण—धूम्र	देवशक्ति—शाकिनी	अँग्रेजी नाम उन नाडियोंके समूहका जो
दलोंके अक्षर—अँसेअः तक	यंत्र—शून्यचक्र (गोलाकार)	इन चक्रोंसे सम्बन्ध रखती हैं— CAROTID PLEXUS.
नामतत्व—आकाश		

BHUTNAHT PRESS, CALCUTTA.
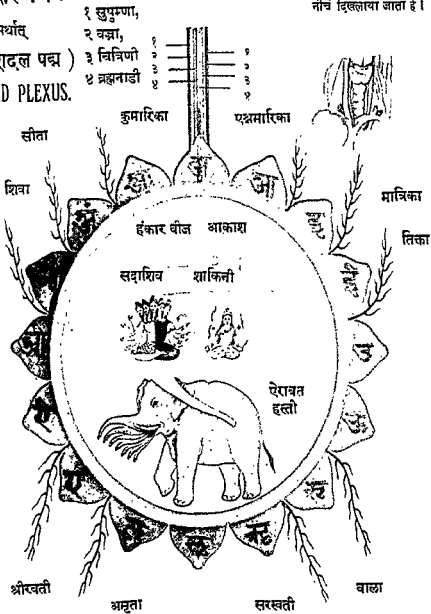
जो योगी सम्पूर्ण योगांगको धारणकिये इस विशुद्धाख्यचक्र को सम्यक् प्रकारसे ध्यान करताहै वह अच्छेप्रकार काव्य करनेमें समर्थ, उत्तमवक्ता, ज्ञानवान, शान्तचित्त, त्रिलोक दर्शी अर्थात् तीनों लोकोंका वृत्तान्त जाननेवाला, सर्व हितकारी और सर्वप्रकार रोग शोक रहित होजाता है, फिर चिरंजीवी और सूर्य्यकी किरणोंके समान सर्वप्रकारकी विपत्तिरूपी अन्धकारके नाश करनेमें समर्थ होजाता है॥५॥

॥ इति ॥

इसीविशुद्धाख्य चक्रकी कर्णिकाके मध्य कंठकुहर है, जिसे कंठकूप भी कहते हैं। यहांही "हँ" आकाश वीज है इसलिये आकाशका कार्य्य इसीकंठकुहरमें होरहा है। तात्पर्य्य यहहै, कि जिसस्थानमें आकाशहोगा वहांही वायुकाभी प्रवेश होगा। इसलिये प्राणवायु इसी मार्गसे निकलता पैठताहै। इस स्थानको संपीडन करनेसे प्राणका अन्तहोजाता है अर्थात् मनुष्यमरजाताहै। इसलिये फांसी देनेवाले भी इसी स्थानको रज्जूसे फांसते हैं, पर कटि, कलाई, कक्ष इत्यादि स्थानों के फांसनेसे मृत्यु नहीं होसक्ती।

इस प्रत्यक्ष प्रमाणको देखकर प्राणायाम करनेवालोंको चाहिये, कि पूरक करते समय इसी कंठकुहरसे प्राणको आकर्षण करें अर्थात् ऊपरकी ओर खैंचे तो अत्यन्त सुलभताके साथ प्राण ऊपरको चढता चलाजावेगा औरचढते-चढते ब्रह्मरन्ध्रतक पहुंच जावेगा क्योंकि प्राणके प्रवाहका मार्ग यही है। [गुरुद्वारा सीखो]

अथ द्विदलपद्मवर्णनम् ।

आज्ञानामाम्बुजँ तद्धिमकरसदृशं ध्यानधामप्रकाशं, हत्ताभ्यां वै कलाभ्यां परिलसितवपुर्नेत्रपत्रँसुशुभ्रम् ॥ तन्मध्ये हाकिनीसा शशिसमधवला वक्त्रषट्कं दधाना, विद्यामुद्रांकपालँडमरुजपवटी विभ्रती शुद्धचित्ता ॥१॥ एतत्पद्मान्तराले निवसति च मनः सूक्ष्मरूपप्रसिद्धं, योनौ तत्कर्णिकायामितर शिवपदं लिंगचिह्नप्रकाशम् ॥ विद्युन्मालाविलासं परमकुलपदं ब्रह्मसूत्रप्रबोधं, वेदानामादिवीजं स्थिरतरहृदयश्चिन्तयेत्तत्क्रमेण ॥ २ ॥ ध्यानात्मा साधकेन्द्रो भवति परपुरे शीघ्रगामी मुनीन्द्रः, सर्व्वज्ञः सर्वदर्शी सकलहितकरः सर्व्वशास्त्रार्थवेत्ता ॥ अद्वैताचारवादी विलसति परमाऽपूर्वसिद्धिप्रसिद्धिः, दीर्घायुः सोऽपि कर्त्ता त्रिभुवनभवने संहृतौ पालनेवा ॥ ३ ॥ तदन्तश्चक्रेस्मिन्निवसति सततं शुद्धबुद्धान्तरात्मा, प्रदीपाभज्योतिः प्रणवविरचनारूपवर्णप्रकाशः ॥ तदूर्ध्वे चन्द्रार्धस्तदुपरि विलसद्बिन्दुरूपी मकारः, तदाद्योनादोऽसौ बलधवलसुधाधारसन्तानहासी ॥ ४ ॥ इहस्थाने लीने सुसुखसदने चेतसिपुरँ, निरालम्बां बध्वा परमगुरुसेवासुनिरतः ॥ सदाभ्यासाद्योगी पवनसुहृदां पश्यति कलां, ततस्तन्मध्यान्तःप्र विलसितरूपानपिसदा ॥५॥ ज्वलद्दीपाकारं च तदपि नवीनार्कबहुल, प्रकाशं ज्योतिर्वा

गगनधरणीमध्यलसितँ ॥ इहस्थाने साक्षाद्भवति भगवान् पूर्ण-
विभवो ऽव्ययः साक्षात् वन्हिः शशिमिहिरयोर्मण्डलइव ॥ ६ ॥
इहस्थाने विष्णोरतुलपरमा मोदमधुरे, समारोप्य प्राणान् प्रमुदितमनाः
प्राणनिधने ॥ परं नित्यं देवं पुरुषमजमाद्यं त्रिजगतां, पुराणं
योगीन्द्रः प्रविशति च वेदान्तविदितम् ॥ ७ ॥ लयस्थानम् वायोस्त-
दुपरि च महानन्दरूपंशिवार्द्धं, शिवाकारं शान्तं वरदमभयदं शुद्धबोध
प्रकाशम् ॥ यदा योगी पश्येद्गुरुचरणसुसेवानुरक्तः सुसिद्ध स्तदा
वाचांसिद्धिः करकमलतले तस्य भूयात् सदैव ॥ ८ ॥

॥ भाष्यम् ॥

आज्ञेति—भ्रुवोर्मध्ये [तत्] प्रसिद्धम् [आज्ञानाम] आज्ञाख्यम् [अम्बुजम्] पद्मम् आज्ञाख्यकमल मितियावत् वर्तत इतिशेषः । ।(कीदृशम्] हिमकरसदृशं चन्द्रतुल्यवर्णम् । पु० की० [ध्यानधामप्रकाशम्] ध्यान धाम्नि भ्रूमध्ये प्रकाशो विकाशो यस्य तादृशं भ्रूमध्ये विकशितमित्यर्थः । की० (हक्षाभ्याम्) ह, क्ष इतिवर्णाभ्यां (वै) इति निश्चयेन (परिलसितवपुर्नेत्रपत्रम्) परिलसिते सुशोभिते वपुषः कायस्य नेत्रे द्वे पत्रे दले यस्य तादृशम् । कीदृशाभ्यां हक्षाभ्यां?(कलाभ्याम्)षोडशांशचन्द्रसमरेखायुक्ताभ्यां चन्द्रबिन्दुसहिताभ्यामिति यावत् । पु०की०; (सुशुभ्रम्) अतिविशदम् । तन्मध्ये तस्य आज्ञाचक्रस्यमध्ये (सा) प्रसिद्धा (शशिसमधवला) चन्द्रतुल्यशुक्लवर्णा (हाकिनी) शक्तिरास्ते । कीदृशी? (वक्त्रषट्कं दधाना) षण्मुखीत्यर्थः । पु०की०, (विद्यामुद्राम्)ज्ञानमुद्रां (कपालम्) मुण्डम्,(डमरुम्) डिमडिमम् (जपवटीम्) जपमालाम् (बिभ्रति) संधारयन्ती । पु० की०? (शुद्धचित्ता) शुद्धं निर्म्मलं चित्तं यस्यास्तादृशी ॥

भ्रूमध्यदेशस्फुटितस्य ह, क्ष, वर्णद्वययुक्तपत्रद्वयविशिष्टस्य आज्ञाख्य पद्मस्यान्तश्चन्द्रवच्छुक्लवर्णा षण्मुखी चतुर्भुजा हाकिनीनाम्नी शक्तिरास्त इतिभावार्थः ॥ १ ॥

एतदिति—पुनः (एतत्पद्मान्तराले) एतत्पद्मस्य आज्ञाचक्रस्य अन्तराले मध्ये (मनो-निवसति) मनोवर्त्तते। कीदृशम् (सूक्ष्मरूपप्रसिद्धम्)सूक्ष्मरूपेण अदृष्टगोचराकारेण प्रसिद्धं विख्यातम्। (तत्कर्णिकायाम् योनौ) तस्य आज्ञाचक्रस्य बीजकोशे (इतरशिवपदम्) इतराख्यशिवस्थानं चिन्तयेदित्यर्थः। की०, (लिंगचिह्नप्रकाशम्) लिंगाकारमूर्त्तेः प्रकाशो यत्र तादृशम् । पु० की०, (विद्युन्मालाविलासम्) विद्युतसमूहवत् विलासो दीप्तिर्यस्य ता० । पु० की०, (परमकुलपदम्) परमशक्तिस्थानम् अर्थात् शक्तचार्द्धांगविशिष्टेतराख्यशिवस्थानमित्यर्थः पु० की०, (ब्रह्मसूत्रप्रबोधम्) ब्रह्मसूत्रस्य ब्रह्मनाड्या प्रबोधः ज्ञानं यस्मात्तादृशम् । पु० की०, [वेदानामादिबीजम्] ऋग्यजुः सामाथर्वणाम् आदिकारणम् प्रणवमित्यर्थः। तत् एतत्सर्वं [स्थिरतरहृदय] अनन्यमना सन् [क्रमेण] क्रमशः [चिन्तयेत्] ध्यायेत् । क्रमो यथा आदौ "हाकिनी" शक्तिस्ततो-मनस्ततः कर्णिकान्तःस्थं शक्तियुतमितराख्यशिवलिंगम् । ततः प्रणवमिति क्रमेण चिन्तयेत्॥२॥

ध्यानात्मेति—"चिन्तनफलमाह" (ध्यानात्मा) आज्ञापद्मध्यानैकचित्तः पुरुषः[साधकेन्द्रः] साधकश्रेष्ठो भवति । पु०की० [परपुरे] परशरीरे (शीघ्रगामी) झटिति प्रवेशनशीलो भवति। स जनः [मुनिन्द्रः] मुनिश्रेष्ठः [सर्वज्ञः] समस्तवेत्ता, (सर्वदर्शी) सर्वदर्शनशीलः, [सकलहितकरः] सकलजनकल्याणकारी, [सर्वशास्त्रार्थवेत्ता] सकलशास्त्रज्ञः,(अद्वैताचारवादी) आत्मज्ञानमार्गप्रदर्शी च भवति । पु० की० [परमापूर्वसिद्धिप्रसिद्धिः] परमा उत्कृष्टा अपूर्वा विलक्षणा यासिद्धिस्तया अतिशयेन प्रसिद्धिः ख्यातिर्यस्य तादृशः सन् [विलसति] विलासंकरोति ॥ [सोऽपि] स साधकोऽपि [दीर्घायुः] चिरंजीवीसन् [त्रिभुवनभवने] जगत् सृष्टिकरणे, [संहृतौ] नाशने[पालने]संरक्षणे [वा] कर्त्ता विधायको भवति, सृष्टिस्थितिप्रलयकरो भवतीत्यर्थः ॥३॥

तदन्तरिति—(अस्मिन्) एतस्मिन् (तदन्तश्चक्रे तस्य आज्ञाख्यपद्मस्य (अन्तश्चक्रे) प्रपदलान्तः आज्ञाख्यचक्रमध्य इतियावत् तत्कर्णिकायामित्यर्थः (शुद्धबुद्धान्तरात्मा)शुद्धबुद्धिभ्यां.

शुक्लो योऽन्तरात्मा चैतन्यं स सततं निवसति निरन्तरंवर्त्तते । की० (प्रदीपाभज्योतिः) प्रदीपाभम् दीपसदृशम् ज्योतिः प्रकाशो यस्य तादृशः प्रज्वलितदीपशिखाकार इत्यर्थः पु० । की०, (प्रणवविरचनारूपवर्णप्रकाशः) प्रणवाक्षराकारवत् प्रकाशो यस्य तादृशः । ॐकाररूप इत्यर्थः । (तदूर्ध्वे) तस्य ॐकाररूपस्य आत्मनः ऊर्ध्वे उपरि (चन्द्रार्द्धः)। अर्द्धचन्द्र इत्यर्थः । (तदुपरि) तस्य अर्द्धचन्द्रस्योपरि [विलसद्बिन्दुरूपीमकारः] विलसन् शोभमानो योबिन्दुस्तद्रूपी तदात्मको मकारो "म" वर्णः अस्तीतिशेषः [तदाद्यः] स मकार आद्य आदौ भवः प्रथम इतियावत् यस्य तादृशः (असौ नादः) अनाहतध्वनिः अनाहतध्वनिस्थानमितियावत् वर्तत इतिशेषः । कीदृशः (वलधवलेति) वलो वलरामइव धवल उज्ज्वलो यः (सुधाधार श्चन्द्रः) तस्य सन्तानं विस्तृति श्चन्द्रकिरण प्रसृतिरित्यर्थः । (तद्धासी) तत्तिरस्कारी ततोऽप्यधिकप्रसरणशील इत्यर्थः । वलधवलश्चासौ सुधाधारसन्तानहासीचेति कर्म्मधारयः ॥ **आज्ञाख्यपद्मस्यान्तः प्रज्वलितदीपशिखाकारम् ॐकाररूपप्रकाशं शुद्धचैतन्यं सदा सँतिष्ठते । तस्योपरिदेशे अर्द्धचन्द्राकाररेखा वर्त्तते । तस्योपरि दीप्यमानविन्दुरूपो मकार एतदप्यूर्ध्वेचानाहतध्वनिस्थानमस्तीतिभावार्थः ॥ ४ ॥**

इहस्थान इति (सुसुखसदने) अनुत्तमानन्दमयसद्मनि (इह) अस्मिन् (स्थाने) प्रदेशे अनाहतध्वनिस्थान इत्यर्थः । (चेतसि) चित्ते (लीने) लयंगते सति (नीरालम्बांपुरम्) निराश्रयांनगरीम् (वद्ध्वा) कृत्वा अन्तरिक्षस्थां पुरीं निर्म्मायेत्यर्थः । (योगी) योगाभ्यासीजनः (सदाभ्यासात्) निरन्तरयोगानुष्ठानात् (पवनसुहृदाम्) अग्नीनां (कलां) ज्योतिः (पश्यति) अर्थादग्निनां कलामिव कलामवलोकत इत्यर्थः । योगी कीदृशः (परमगुरुसेवासुनिरतः) परब्रह्मार्चनायां वा योगमार्गदर्शकशुश्रूषायामासक्तः (ततः) कलादर्शनान्तरम् (तन्मध्यान्तः) तस्या कलायामभ्यन्तरे (सदा) सर्वदा (प्रविलसितरूपानपि) प्रदीपिताकारानपि नानाविधदिव्यरूपानपि पश्यतीत्यर्थः ॥ **अनुत्तमानन्दमयसद्मनि अनाहतध्वनिस्थाने मनसिलीनेसति गूरुशुश्रुषकोयोगी निराश्रयांनगरीं कल्पयित्वा योगानुष्ठानवलात् तत्राग्निकलामवलोकयन् तत्कलान्तर्नानाविधदिव्यरूपानपि पश्यतीतिभावार्थः ॥ ५ ॥**

ज्वलद्दीपाकारमिति-- (तदपिज्योतिर्वा) तत् प्रस्तुतँ कलापरपर्य्यायं ज्योतिरेवापि तेजएवापि । अत्र वा शब्दएवार्थवाचकः । "वास्याद्विकल्पोपमयो रेवार्थेच समुच्चय इतिकोशः" (गग-

नवरणीमध्यलसितम्) स्वर्गपृथिव्योर्मध्ये (लसितम्) दीपितम् प्रज्वलितमितियावत्, साधकः पश्यतीतिशेषः । अर्थादुपरि स्वर्गः अधः पृथ्वी तन्मध्ये यावत्स्थानं तत्सर्वमेव ज्योतिर्मय मवलोकत इतिभावः। कीदृशम् ज्योतिः (ज्वलद्दीपाकारम्) ज्वलन् दीप्यमानो यः प्रदीपः तद्वदाकारः स्वरूपम् यस्य तादृशम् । की०, (नवीनार्कबहुलप्रकाशम्) नवीनः प्रातःकालीनो योऽर्कः बालसूर्य इति यावत् तद्वद् बहुलः प्रचुरः प्रकाशो दीप्तिर्यस्य ता० । (इहस्थाने) अस्मिन् ज्योतिरूपस्थाने (भगवान्) परब्रह्म (साक्षाद्भवति) योगिजनस्य ज्ञानगोचरो भवतीत्यर्थः । की० (पूर्णविभवः) पूर्णः सम्पूर्णो विभवो विभुत्वं सृष्टिस्थितिसंहारकर्तृत्वं यस्य ता० । पु० की०, (अव्ययः) नाशरहितः । क इव (वह्निः शशिमिहिरयोर्मण्डलइव) यथा अग्निश्चन्द्रसूर्य्ययोर्मण्डले (साक्षाद्भवति) प्रत्यक्षगतो भवति तद्वत् । यद्वाऽत्र वह्नेरिति पञ्चम्यन्तपदम् तर्हि वह्निमण्डले शशिमिहिरयोर्मण्डलेच भगवान् साक्षाद्भवति तथा इहस्थानेऽपि साक्षाद्भवतीत्यर्थः । एतत्त्रयस्थानेष्वीश्वरस्य सदाऽवस्थानादिति भावः ॥ **प्रदीपशिखाकारं नवोदितदिनकरवत्प्रचुरप्रकाशमानम् पूर्वश्लोकवर्णितमग्निकलात्मकज्योतिरेव द्यावापृथिव्योर्मध्ये लसितं योगिजनस्य दृष्टिगोचरं भवति । अस्मिन्नेव ज्योतीरूपस्थानेऽग्निशशिसूर्य्यमण्डलइव सृष्टिस्थितिलयकरस्य परमात्मनः साक्षात्कारोऽपिभवतीतिभावः ॥ ६ ॥**

इहेति—(योगीन्द्रो) योगिश्रेष्ठोजनः (प्रमुदितमनाः) हृष्टमनाः सन् (प्राणनिधने) प्राणत्यागसमये विष्णोर्नारायणस्य (इह) अस्मिन् (स्थाने) प्रदेशे उक्तविशेषणविशिष्टस्य आज्ञा नामकचक्रस्यान्तर्गते ज्योतिर्मयस्थान इतियावत् (प्राणान् समारोप्य) प्राणान् संस्थाप्य (परंपुरुषम्)परब्रह्मस्वरूपम् (प्रविशति) प्रवेशंकरोति तत्रैवलीनो भवतीत्यर्थः । स्थाने कीदृशे? (अतुलपरमामोदमधुरे) अतुलः अनुपमः तुलनारहित इति यावत् यः परमामोद उत्कृष्टानन्दः स एव मधु क्षौद्रं तद्विद्यतेऽस्य तस्मिन् अर्थात् अप्रतिमाद्युत्तमानन्दरूपमधुविशिष्टे । पुरुषं कीदृशम्, (नित्यम्) अविनाशिनम् । पु० की०, [अजम्] जन्मरहितम् । पु० की०, [त्रिजगताम्] स्वर्गमर्त्यपातालानाम् [आद्यम्] प्रथमम । पु० की० [पुराणम्] चिरन्तनम् । पु० की०, [वेदान्तविदितम्] वेदान्तशास्त्रेण प्रतिपादितं ज्ञातम्वा ॥ **प्रहृष्टमनस्को यतिजनोऽनुपमहर्षातिरेकयुक्ते ऽस्मिन्नेव पूर्णविभवस्य विष्णोराज्ञाख्यमण्डलान्तःस्थितज्योतीरूपे स्थाने प्रा-**

नंबर ६
आज्ञाचक्र
अर्थात्
(द्विदल पद्म)
MEDULLA.

१—सुषुम्णा
२—वज्रा
३—चित्रिणी
४—ब्रह्मनाडी

इस चक्रका ठीक स्थान भ्रुवोंके बीच नीचे दिखलाया जाता है।

डोला

हाकिनी

इतराख्य महालिङ्ग

ॐकारप्रणव

गांधारी

हस्तिजिह्वा

अर्द्धनारीश्वर

ब्रह्मनाडी
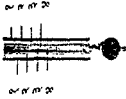
नाम चक्र—आज्ञा
स्थान—भ्रूमध्य
दल—द्विदल
वर्ण—श्वेत
दलोंके अक्षर – हं, क्षं
नामतत्व—महतत्व

तत्वबीज—ॐ
बीजका वाहन—नाद
देव—लिङ्ग
देवशक्ति—हाकिनी
यंत्र—लिंगाकार

ध्यानफल।
वाक्यसिद्धि प्राप्त होती है।
अँग्रेजी नाम उन नाड़ियोंके समूहका जो इन चक्रोंसे सम्बन्ध रखती है—
MEDULLA.

BHUTNATH PRESS CALCUTTA.

णान् संस्थाप्य वेदान्तविश्रुतं त्रिभुवनहेतुं पुराणपुरुषं प्रविशतीतिभावः ॥ ७ ॥

लयस्थानमिति—(योगी) योगाभ्यासी पुरुषः (गुरुचरणसेवासुनिरतः) गुरुपादपद्मशुश्रूषानुरक्तः सन् यदां यस्मिन्काले [वायोः] प्राणस्य [लयस्थानम्] निरोधप्रदेशम् पूर्वश्लोकोक्तविशेषणार्थविशिष्टज्योतिस्थानम् (तदुपरि) तदनन्तरम् (शिवार्द्धंच) अर्द्धांगशिवंच (पश्येत्) ध्यानेन विजानीयात् (तदा) तस्मिन्काले तस्य योगिनः (करकमलतले) हस्तपद्मे सदैव सर्वस्मिन्नेवकाले (वाचांसिद्धिर्भूयात्) वाचां वाक्यानां सिद्धिर्निष्पत्तिः वाक्यसंसिद्धिरिति यावत्स्यात् अर्थात् स योगिजनः यद्वाक्यं ब्रवीति तदवितथमेवभवतीत्यभिप्रायः । की० (शिवार्द्धम्) शिवायाः पार्वत्या (अर्द्धम्) अर्द्धावयवो यत्र तादृशम् अर्थात् दुर्गार्द्धांगविशिष्टम् । पु० की०, (महानन्दरूपम्) अत्यन्तानन्दमयम् । पु० की०, (शान्तम्) शांतस्वरुपम् । पु० की०, (वरदम्) भक्तजनमनोभिलषितसम्पादकम् । पु० की०, (अभयदम्) मोक्षप्रदम् । पु० की०, (शुद्धबोधप्रकाशम्) शुद्धबोधस्य निर्मलज्ञानस्य प्रकाश उदयो यस्मात् तादृशम् । एतच्छिवार्द्धदर्शनान्निर्म्मलज्ञानम् भवतीत्यर्थः ॥ साधको यदा वायुलयप्रदेशं पूर्वोक्तज्योतिःस्थानं तदनन्तरमानन्दस्वरूपं शिवार्द्धंच ध्यायेत् तदा तस्य सदैव वाक्यसिद्धिर्हस्तगता भवेदिति भावार्थः ॥ ८ ॥

॥ भाषा टीका ॥

भ्रूमध्य अर्थात् दोनों भउहोंके बीच प्रकाशमान् ललाटस्थानमें दोदलका एक कमल हिमकर अर्थात् चन्द्रमा समान शुक्लवर्णका है, इसीको आज्ञाख्य पद्म कहते हैं, जिसके दोनों दलोंपर अकार स्वरयुक्त और चन्द्रविन्दु सहित "हँ" " क्षँ " दो अक्षर शोभायमान हो रहे हैं। इस पद्म के मध्य चन्द्रमा समान शुक्लवर्ण स्वच्छ स्वरूप निर्मल चित्त षडमुखी "हाकिनी" नाम देवी चारों भुजाओंमें, ज्ञानमुद्रा, कपाल, डमरू, जपवटी [माला] धारण किये विराजमान होरही है ॥ १॥

फिर इस "आज्ञापद्म" के मध्य मनका निवास अति सूक्ष्मरूपसे है और इसी कमलकी कर्णिकाके बीच "इतराख्य" शिवस्थान है, जहां कोटि दामिनी समान दमकता हुआ अर्द्धांग

परमशक्ति सहित " इतराख्य " नाम शिवलिंग वर्त्तमान है, जहांसे ब्रह्मनाडीका बोध होता है। इसी स्थानपर वेदोंका बीज प्रणव " ॐ " शोभायमान होरहा है । साधकोंको चाहिये, कि इस स्थानमें अत्यंत स्थिरचित्त होकर क्रमसे उक्त पदार्थों की चिन्ता करे; अर्थात् "आज्ञाख्य" कमलके मध्य "हाकिनी" नाम देवी, तत्पश्चात् मन, तब अर्द्धांगमें परमशक्ति सहित "इतराख्य" शिवलिंग, तत्पश्चात् प्रणव ॐ का ध्यान करे । ऐसे ध्यान करनेसे और इस स्थानमें अत्यन्त स्थिर होकर नेत्रोंको उलटकर देखनेसे "मूलाधारपद्म" से "सहस्रदलपद्म" तक लगी हुई ब्रह्मनाडीका बोध होता है ॥ २ ॥

जो प्राणी उक्त प्रकार इस स्थानमें ध्यान करता है, वह साधकोंमें श्रेष्ठ अपने शरीरसे दूसरोंके शरीरमें प्रवेश कर जानेवाला, फिर मुनीन्द्र अर्थात् मुनियोंमें उत्तम सर्व्वज्ञ, सर्वशास्त्र जाननेवाला सर्वदर्शी, सर्व हित कारी, अद्वैतवादी, अत्यन्त अपूर्व सिद्धियों विषय ख्यात, दीर्घजीवी, और तीनों लोककी रचना, पालन और सँहारमें ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरके समान समर्थ होजाता है ॥३॥

फिर इस चक्रके मध्य दोनो भउहोंके बीच उक्त स्थानमें प्रणव वर्णात्मक अर्थात् ॐकार वर्णात्मक शुद्धस्वरूप बुद्धि विशिष्ट प्रज्वलित दीपशिखाकार "अन्तरात्मा" निवास करता है । इस ॐकार रूप अन्तरात्माके ऊपर द्वितीयाके चन्द्रमाके समान "अर्द्धचन्द्र" शोभा देरहा है, तिसके ऊपर विन्दु रूप "मकार" है, तहांसे नाद आरम्भ है, अर्थात् "अनाहतध्वनि" का स्थान है यह अनाहत्स्थान "श्री बलरामजी" के अँग ऐसा स्वच्छ और चन्द्रमाकी छिटकीहुई किरणोंसे भी अधिक निर्म्मल शोभायमान् होरहा है ॥ ४ ॥

इस सुखसे भरेहुये आनन्दमय "अनाहतध्वनिस्थान" में चित्त लीन होनेसे और परमगुरु सेवा द्वारा विदित जो "निरालम्बमुद्रा" तिसके अभ्याससे अर्थात् "अन्तरिक्षपुरी" को निर्म्माण * कर अच्छे प्रकार चित्तको लीनकरनेसे साधक उत्तम योगी होकर पवनसुहृन् अर्थात् अग्निकलाके समान आत्मज्योति कलाका और नानाप्रकारके विचित्ररूपोंका दर्शन पाकर सकल ब्रह्माण्ड अर्थात् सम्पूर्ण सृष्टिको आत्मज्योतिमय देखने लगताहै ॥ ५ ॥

फिर इसी उत्तमस्थान अर्थात् " निरालम्बपुरी" में बलतीहुई दीपसिखा और प्रातःकालके बालरविके किरणोंके समान ऊपर आकाशमण्डलसे नीचे पृथ्वीमण्डल तक अर्थात् नादविन्दुके मध्य पूर्ण ज्योतिही-ज्योति देखपडती है और इसी स्थानमें साक्षात् ईश्वर अविनाशी अपने पूर्ण-

* अन्तरिक्षपुरी निर्म्माण करना अर्थात् निरालम्बमुद्रा लगाना गुरुद्वारा जाना जाता है, लेखनमें नहीं आसकता ।

विभवको अर्थात् सृष्टि पालन संहारकी शक्तिको धारणकिये अग्नि, चन्द्र और सूर्य्यमण्डलके समान सर्वात्माके साक्षीभूत प्रत्यक्षरूपसे प्रगट होते हैं, अथवा जैसे अग्नि, सूर्य्य और चन्द्रमामें सदा भगवान् निवास करते हैं, ऐसेही इस स्थानमें भी सदा जिनका अवस्थान है ॥ ६ ॥

इसी परमसुखसे भरेहुए अपूर्व विष्णुपुरी परम ज्योतिमय मधुर स्थानमें अर्थात् उक्त "आज्ञाचक्र" में श्रेष्ठ योगीजन प्राणपरित्याग समय अत्यन्त आनन्दके साथ प्राण आरोपित कर उस श्रेष्ठ, नित्य, अविनाशी, अजन्मा, तीनोंलोकसे आदि अर्थात् सबसे प्रथम, पुराण, सनातन, वेदान्तवेद्य अर्थात् वेदान्तद्वारा जानने योग्य, परमपुरुषमें लय होजातेहैं। जैसे श्रीकृष्णभगवान्ने भी अर्जुनके प्रति गीतामें कहाहै कि "प्रयाणकाले मनसाऽचलेन भक्त्यायुक्तो योगबलेनचैव। भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक् स तं परंपुरुषमुपैति दिव्यम्" गीता अ० ८ श्लो० १०। अर्थात् जो प्राणी मरणकालमें स्थिरचित्त हो भक्तिपूर्वक और योगबलद्वारा दोनो भ्रवोंके मध्य प्राण आरोपित करलेताहै वह परमपुरुषको प्राप्त होताहै ॥ ७ ॥

यही "आज्ञाचक्र" कुम्भक द्वारा वायुके लय करनेका स्थान है अर्थात् पूर्वोक्त ॐकाराधिष्ठित स्थानसे ऊपर शिवलिङ्गाकार एक स्थान है जहां सम्पूर्ण शरीरका वायु प्राणायामके समय प्राणके साथ मिलकर लय होजाताहै, यदि साधक गुरुसेवा द्वारा इसी स्थानमें महानन्द, शान्तस्वरूप, अभय और अभिष्टफलदायक, शुद्धबुद्धिके प्रकाश करनेवाले, शिवार्द्ध अर्थात् द्विभुज अर्द्धाङ्ग शिवका दर्शनपावे तो उसीक्षण उसको वाक्यसिद्धि करतलगत होजावे ॥ ८ ॥

॥ इति ॥

अथ सहस्त्रदलपद्मवर्णनम् ।

तदूर्ध्वे शङ्खिन्या निवसति शिखरे शून्यदेशप्रकाशँ, विसर्गाधःपद्मं दशशतदलं पूर्णपूर्णेन्दु शुभ्रम् ॥ अधोवक्त्रं कान्तं तरुणरविकलाकान्त-किञ्जल्कपुञ्जम्, ललाटाद्यै वर्णैः प्रविलसिततनुं केवलानन्दरूपम् ॥१॥ समास्ते तत्रान्तःशशपरिरहितः शुद्धसम्पूर्णचन्द्रः, स्फुरज्ज्योत्स्नाजालः परमरसचयस्निग्धसन्तानहासः ॥ त्रिकोणं तस्यान्तः स्फूरतिच सततं विद्युदाकाररूपं, तदन्तः शून्यन्तत् सकलसुरगुरुं चिन्तयेच्चातिगुह्यम् ॥ २ ॥ सुगोप्यं तद्यत्नादतिशयपरमामोदसन्तानराशेः, परं कन्दं सूक्ष्मं शशि सकलकला शुद्धरूपप्रकाशम् ॥ इहस्थाने देवः परमशिव समा-ख्यानसिद्धप्रसिद्धिः, स्वरूपी सर्व्वात्मा रसविसरमितोऽज्ञानमोहान्ध-हंसः ॥ ३ ॥ सुधाधारासारं निरवधि विमुञ्चन्नतितरां, यतेरात्मज्ञानं दिशतिभगवान्निर्म्मलमतेः ॥ समास्ते सर्व्वेशः सकलसुखसन्तानलहरी, परीवाहो हंसः परम इति नाम्ना परिचितः ॥ ४ ॥ शिवस्थानं शैवाः परम-पुरुषं वैष्णवगणा, लपंतीति प्रायो हरिहरपदं केचिदपरे ॥ पदंदेव्या देवी चरणयुगलानन्दरसिका, मुनीन्द्रा अप्यन्ये प्रकृतिपुरुषस्थानमम-लम् ॥ ५ ॥ इहस्थानँ ज्ञात्वा नियतनिजचित्तो नरवरो, न भूयात् सँसारे क्वचिदपि च बद्धस्त्रिभुवने ॥ समग्राशक्तिः स्यान्नियममनसस्तस्य कृतिनः, सदा कर्त्तुं हर्त्तुं खगतिरपि वाणी सुविमला ॥ ६ ॥ अत्रास्ते शिशुसूर्य्यसोदरकला चन्द्रस्य सा षोडशी, शुद्धा नीरजसूक्ष्मतन्तुशतधा

भागैकरूपा परा ॥ विद्युद्दाम समानकोमल तनुर्नित्योदिताऽधोमुखी पूर्णानन्दपरम्परातिविगलत्पीयूषधाराधरा ॥ ७ ॥ निर्वाणाख्यकला परात्परतरा सास्ते तदन्तर्गता, केशाग्रस्य सहस्रधाविभजितस्यैकांशरूपा सती ॥ भूतानामधि दैवतं भगवती नित्यप्रबोधोदया, चन्द्रार्द्धाङ्गसमान भङ्गुरवती सर्व्वार्कतुल्यप्रभा ॥ ८ ॥ एतस्या मध्यदेशे विलसति परमाऽपूर्व्वनिर्व्वाणशक्तिः, कोट्यादित्य प्रकाशा त्रिभुवनजननी कोटिभागैकरूपा ॥ केशाग्रस्यातिगुह्या निरवधि विलसत्प्रेमधारा धरा सा, सर्व्वेषां जीवभूता मुनिमनसिमुदा तत्वबोधं वहन्ती ॥ ९ ॥ तस्या मध्यान्तराले शिवपदममलं शाश्वतं योगिगम्यं, नित्यानन्दाभिधानं परमकुलपदं शुद्धबोधप्रकाशम् ॥ केचिद्ब्रह्माभिधानं परमतिसुधियोवैष्णवास्तुष्टन्ति, केचिद्धंसाख्यमेतत् किमपिसुकृतिनोमोक्षवर्त्मप्रकाशम् ॥१०॥

॥ भाष्यम् ॥

तदूर्ध्वइति—(तदूर्ध्वे) तस्य आज्ञाचक्रस्य ऊर्ध्वे उपरिभागे (शङ्खिन्या) एतदाख्या नाड्याः। (शिखरे) मस्तके (विसर्गाधो) विसर्गः शक्तिस्तस्य अधः तले (दशशतदलपद्मं) सहस्रदलं पङ्कजं [निवसति] वर्तते । कीदृशम् (शून्यदेशप्रकाशम्) शून्यदेशे ब्रह्माण्डे प्रकाशः विकाशः स्फोट इति यावत् यस्य तादृशम् । पु० की०, (पूर्णपूर्णेन्दुशुभ्रम्) पूर्णपूर्णोऽतिशयपूर्णो य इन्दुश्चन्द्रस्तद्वत् शुभ्रंशुक्लवर्णम् । पु० की०, (अधोवक्त्रम्) अधोमुखम् । पु० की० [कान्तं] मनोहरम् पु० की०, [तरुणेति] तरुण्यो या रविकला मध्याह्नकालीनसूर्य्यरश्मयस्तद्वत्कान्तं मनोज्ञं । (किञ्जल्कपुञ्जं) केशरसमूहो यस्मिन् ता० । पु० की०,[ललाटाद्यैर्वर्णैः] ललाटः अकारः आद्यः प्रथमो येषां तादृशैः अकारादिभिरक्षरैः [प्रविलसिततनुम्] प्रविलसिता सुशोभिता तनुराकारो यस्य तादृशम् । अकाराद्यक्षरविशिष्टसहस्रदलमित्यर्थः । पुनः की०, [केवलानन्दरूपं] नित्यानन्दस्वरूपम् । आज्ञाचक्रस्योपरिदेशे शङ्खिनीनामिकाया नाड्याः शिखरप्रदेशे वि-

सर्गशक्त्या अधस्थाने अकारादिक्षान्तपंचाशदक्षरसंशोभितदलं परमानन्दस्वरूप मधोमुखं सहस्रदलपद्मं विलसतीतिभावार्थः ॥ १ ॥

समास्तइति—[तत्रान्तः] सहस्रदलपद्मस्य मध्ये (शशपरिरहितः) कलङ्कविहीनः (शुद्धसम्पूर्णचन्द्रः) निर्म्मलपूर्णचन्द्रः (समास्ते) सम्यक्तिष्ठति । की० (स्फुरज्ज्योत्स्नाजालः) स्फुरन् विलसन् ज्योत्स्नाजालः चन्द्रिकासमूहो यस्य तादृशः । पुनः की०, (परमरसचयः) परमोयोरसः अमृतं तस्यचयः समूहस्तेन (स्निग्धसन्तानहासः) स्निग्धं सान्द्रं क्लिन्नमिति यावत् सन्तानम् विस्तृतिः तदेव हासः प्रकाशो यस्य तं० । (तस्यान्तः) चन्द्रस्यान्तरदेशे (त्रिकोणम्) त्रिकोणाकारशक्तिः (सततम्) निरन्तरम् (स्फुरति) दीप्यते । की० त्रिकोणम् (विद्युदाकाररूपम्) विद्युत्स्वरूपम् । (तदन्तः) तस्य त्रिकोणस्यमध्ये (तत्) प्रसिद्धं (शून्यम्) निराकारम् (चिन्तयेत्) ध्यायेत् । की० (सकलसुरगुरुम्) सर्वदेवश्रेष्ठम् । पुनः की०, (अतिगुह्यम्) अतिशयगोपनीयम् ॥ उक्तचक्रस्यान्तर्वर्तमानस्य निष्कलङ्कस्य पूर्णचन्द्रस्यान्तरे चपलावत्स्फुरत्स्वरूपे त्रिकोणे सकलसुरपूज्य मतिगोप्यं शून्य मास्ते । मुमुक्षुभिस्तदेवचिन्तनीयमिति भावार्थः ॥ २ ॥

सुगोप्यमिति—(युग्मम) [तत्]शून्यम् (यत्नात्)प्रयासात् (सुगोप्यम्) सुष्ठुप्रकारेण गोपनीयम् । की०, (अतिशयपरमामोदसन्तानराशेः) अतिशयोऽत्यन्तो यः परमामोदसन्तानः परमहर्षसन्ततिः तस्य यो राशिः समूहः तस्य (परम्) केवलं (कन्दं) मूलकारणम् । पुनः की०, (सूक्ष्मम्) दृष्ट्यगोचरम् । पुनः की०, [शशिसकलकलाशुद्धरूपप्रकाशम्] शशिनश्चन्द्रस्य या सकलकला षोडशकला तद्वत् शुद्धः निर्म्मलः आकारकान्तिर्यस्य तादृशम् । पूर्णचन्द्रप्रकाशमित्यर्थः । (इहस्थाने) अस्मिन् शून्यस्थाने [देवः] ईश्वरः [निरवधिः] निरन्तरं [सुधाधारासारम्] अमृतधारावृष्टिम् (अतितरां) अतिशयेन विमुञ्चन् त्यजन् [निर्म्मलमतेः] शुद्धबुद्धेः(यते)र्योगिन [आत्मज्ञानम्] ब्रह्मज्ञानम् [दिशति] ददाति । की० देवः (परमशिवसमाख्यानसिद्धप्रसिद्धिः) । परममुत्कृष्टं यत् शिवसमाख्यानं शिवेति नाम तेन सिद्धेषु सिद्धगणेषु प्रसिद्धिः ख्यातिर्यस्य तादृशः । पुनः की०, (खरूपी) आकाशस्वरूपः । पुनः की०, (रसविसरमितः) रसः शिवशक्तियोगानन्दरसः तस्य विसरः ज्ञानं तम् इतः प्राप्तः । परमरसमय इत्यर्थः । पुनः की०, (अज्ञानमोहान्धहंसः) अज्ञानमोहः अतिशयाज्ञानं स एवयो ऽन्धकारः तस्य हंसः सूर्य्यः अज्ञाननाशक इत्यर्थः । यथा सूर्य्योऽन्धकारं नाशयति तथैव अयमपि जीवानां अज्ञानरूपान्धकारं नाशयतीत्यर्थः ॥ ३ ॥

पुनः कीदृशी ? (परमइति नाम्ना परिचितः) परमइति संज्ञया परिचितः प्रसिद्धः (हंसः) परब्रह्म परमहंस इतियावत् । परमशिव इत्यर्थः (समास्ते) सम्यक्तिष्ठति । कीदृशः (सर्व्वेशः) सर्वेषां भूतानामीशः स्वामी, सृष्टिस्थितिसंहारकारकत्वात् । पुनः की०, (सकलसुखसन्तानलहरीपरिवाहः) सकलसुखसन्तानः सर्वसुखराशिः तस्यलहरी-तरंगस्तस्याःपरिवाह आश्रयो जलप्लावनम् वा । अखिलानन्दमय इत्यर्थः ॥ ४ ॥ परमानन्दकन्देऽतियत्नाद्गोपनीये पूर्वोक्तशून्यस्थाने स्वच्छमतेर्योगिनं आत्मज्ञानं जनयन् सतत सुधाधारविमुञ्चन्नज्ञानतिमिरनाशकः परमहंसनाम्ना प्रसिद्धः परमशिव आस्ते इतिभावार्थः ॥ ३ ॥ ४ ॥

शिवस्थानमिति—(शैवाः) शिवसेवकाजनाः एतत् सहस्रारं पद्मम् (शिवस्थानम्) महेश्वरस्थानम् । (वैष्णवगणाः) विष्णुभक्तवर्गाः (परमपुरुषं) परमः सर्वोत्कृष्टः पुरुषः सांख्योक्तपरमेश्वरो यत्र तादृशम् नारायणस्थानमित्यर्थः । (केचिदपरे) अन्येकेचिज्जनाः प्रायो बाहुल्येन (हरिहरपदम्) हरिहरस्थानम् । (देवीचरणयुगलानन्दरसिकाः) देव्या भगवत्याः पादद्वयस्य य आनन्दः सुखं तस्य रसिका अनुरागिनः प्रेमिण इतियावत् (पदंदेव्या) भगवत्यास्थानं (मुनीन्द्राप्यन्ये) अन्येऽपरेऽपिमुनीन्द्राः योगिश्रेष्ठाजनाः (अमलम्, निर्म्मलम् (प्रकृतिपुरुषस्थानम्) मायाब्रह्मस्थानमिति (लपन्ति) कथयन्ति । ये साधकाः यद्देवभक्ताः तेऽप्येतत्सहस्रदलपद्मं तत्तद्देवस्थानं कथयन्तीतिभावः । शैवादयोदेवभक्ताः पूर्ववर्णितं तदेव शून्यस्थानं स्वस्वेष्टदेवस्थानमेव कथयन्तीतिभावार्थः ॥ ५ ॥

इहस्थानमिति—(नरवरः) नरश्रेष्ठः (इहस्थानम्) एतत्सहस्रदलपद्मम् (ज्ञात्वा) बुध्वा अर्थादेतत्कमलं स्वकीयेष्टदेवस्थानं विज्ञाय (नियतनिजचित्तः) नियतं वशीकृतं निजचित्तं येन तादृशः वशीकृतस्वमनस्कः सन् (संसारे) जन्ममरणात्मकसंसृतौ (च) पुनः (त्रिभुवने) स्वर्गमर्त्यपातालेषु (क्वचिदपि) कुत्रचिदपिदेशे (बद्धः) संयतः (नभयात्) अर्थात् तस्य न पुनर्जन्मेतिभावः । (नियममनसः) नियमे ईश्वरार्च्चनायां मनो यस्य तादृशस्य (तस्यकृतिनः) पुण्यात्मनो जनस्य (सदा) सर्व्वदा (कर्त्तुं) सृष्टिपालने विधातुं (हर्त्तुं) संहारंकर्त्तुं (समग्रा) सम्पूर्णा (शक्तिः) सामर्थ्यम् (स्यात्) भवेदित्यर्थः । (अपि) पुनः तस्य जनस्य (खगतिः) खेचरी सिद्धिः (सुविमला) संस्कृता (वाणीच) वाक्च (स्यात) भवेत् ॥ वशी प्रयतो मानवेन्द्रस्तच्छून्यस्थानमेव निजदेवस्थानं विज्ञाय जन्मादिक्लेशविमुक्तः सन् समग्रां शक्ति-

लभत इतिभावार्थः ॥ ६ ॥

अत्रास्तइति——(अत्र) अस्मिन् सहस्रदलान्तर्गतत्रिकोणे (सा) प्रसिद्धा अनानाम्नी (चन्द्रस्य) हिमकरस्य (षोडशी) षोडशांसमता (शिशुसूर्य्यसोदरकला) प्रातःकालीनसूर्य्यस्य सोदरा सदृशी या कला रक्तवर्णा इत्यर्थः सा (आस्ते) तिष्ठति । कीदृशी (शुद्धा , निर्म्मला निर्व्विकारेतियावत् । पुनः की०, (नीरजेति) नीरजस्य पद्मस्य सूक्ष्मतन्तोः मृणालसूत्रस्य शतधाभागानां शतसंख्यकखण्डानाम् एकरूपा एकखण्डसदृशसूक्ष्माकारा । पुनः की०, (परा) श्रेष्ठा । पुनः की०, (विद्युद्दामसमानकोमलतनुः) विद्युद्दाम्नो विद्युच्छ्रेण्याः समाना सदृशी कोमला स्निग्धा तनुः शरीरं यस्यास्तादृशी । की०, (नित्योदिता) सततप्रादुर्भूता तस्य क्षयोदययोरभावात् । नित्यप्रकाशवतीत्यर्थः पुनः की०, (अधोमुखी) अधोवदना । पुनः की०, (पूर्णानन्देति) पूर्णानन्दस्य परम्पराया अखिलानन्दस्य श्रेण्या अतिविगलन्ती निःसरन्ती या पीयूषधारा अमृतस्रुतिः तस्या धरा धात्री तद्धारणकर्त्रीत्यर्थः ॥ अस्मिन्नेव शून्यस्थानेऽतिसूक्ष्ममृणालसूत्रशततमांशरूपा चपलामालास्निग्धाङ्गी ब्रह्मस्थानात्स्रवदमृतधारावहा निरन्तरोद्गताऽधोवदना बालसूर्य्यसमा अनानाम्नीविधोः षोड़शीकला वर्त्तत इतिभावः ॥ ७ ॥

निर्व्वाणेति——(तदन्तर्गता) तस्या अनानाम्न्याः कलाया अन्तर्गता मध्यस्थिता कला निर्व्वाणनाम्नी कलारेखा आस्ते तिष्ठति । कीदृशी (परात्परतरा) उत्कृष्टादप्युत्कृष्टतरा सर्वश्रेष्ठेत्यर्थः । पुनः की०, (केशाग्रस्य सहस्रधाविभजितस्य, सहस्रांशीकृतस्य केशाग्रस्य कचाग्रस्य (एकांशरूपा) एकभाग सदृशाकारा अतिशयसूक्ष्मेतियावत् तादृशी (सती) विद्यमाना । की०, „ भूतानामधिदैवतं „ प्राणिनामधिदेवतास्वरूपा । दैवतमित्यस्य अजहल्लिङ्गत्वात् क्लीवत्वम् ।पुनः की०, (भगवती षडैश्वर्य्यादियुक्ता ।) पुनः की०, (चन्द्रार्द्धाङ्गसमान भंगुरवती) बालविधुसदृशकुटिलाकारा । पुनः की०, (सर्व्वार्कतुल्यप्रभा) द्वादश सूर्य्यसदृशदीप्तिमतीत्यर्थः ॥ पूर्वोक्ताया अनानाम्न्याः कलायाअन्तर्गता केशाग्रसहस्रतमांशसूक्ष्मा चन्द्रार्धसमकुटिला द्वादशादित्यवत्प्रकाशमाना भूतानामधिदेवता ज्ञानरूपा निर्वाणाभिधेया कला समास्तइतिभावार्थः ॥ ८ ॥

एतस्यांइति—(एतस्या) निर्व्वाणाख्यकलाया (मध्यदेशे मध्यस्थाने(सा) प्रसिद्धा (परमा उत्कृष्टा (अपूर्वानिर्व्वाणशक्तिः) विलक्षणनिर्व्वाणाख्य शक्ति विलसति विलासं करोति । कीदृशी (कोट्यादित्य-

प्रकाश) कोट्यादित्यानां कोटिसंख्यक सूर्य्यानां प्रकाशइव प्रकाशो यस्यास्तादृशी । पुनः की०, (त्रिभुवनजननी) स्वर्गमर्त्यपातालानां प्रसविनी तज्जननकर्त्रीत्यर्थः । की०, (केशाग्रस्य) कचाग्रस्य , कोटिभागैकरूपा) कोट्यंशानामेकरूपा एकांशरूपा अतिशयसूक्ष्मेतियावत् । पुनः की०, (अतिगुप्ता) अत्यन्तगोपनीया सर्वेभ्योऽनिवेदनीयेतियावत् । पुनः की०, (निरवधीति) निरवधि निर्म्मर्य्यादं यथास्यात्तथेत्यर्थः । विलसन्ती शोभमाना या प्रेमधारा स्नेहपरम्परा तस्य [धरा] धात्री । निरवधिविलसन्ती चासौ प्रेमधाराधरेतिकर्म्मधारयः । पुनः की०, [सर्वेषां] सकलप्राणिनां [जीवभूता] प्राणात्मिका । पुनः की०, [मुनिमनसि] योगिजनचित्ते [मुदा] हर्षेण तत्वबोधं ब्रह्मज्ञानं [वहन्ती] प्रापयन्ती । मननशीलानां तत्वज्ञानस्य जनिकेत्यर्थः ॥

पूर्वोक्ताया निर्वाणकलायामध्ये कोटिसूर्य्यसमप्रकाशिका त्रिभुवनप्रसविनी केशस्यकोटितमांश सूक्ष्मरूपाऽतिगोपनीया प्राणिनां जीवरूपा निर्वाणशक्तिर्यतीनां ब्रह्मज्ञानं जनयन्ती सती विलसतीति भावार्थः ॥ ९ ॥

तस्या इति—तस्या निर्व्वाणशक्त्या [मध्यान्तराले] मध्यभागे [अमलं] निर्म्मलं [शिवपदम्] शिवस्थानमस्तीतिविशेषः ।की०(शाश्वतम्) नित्यम् । की०,(योगिगम्यम्)योगिभिः योगाभ्यासिभिः गम्यं प्राप्यं योगिभिर्ज्ञेयमित्यर्थः । की०, [नित्यानन्दाभिधानम्] नित्यानन्दः सदानन्द इत्यभिधानं नाम यस्य तादृशम् । की०, [परमकुलपदम्] परमशक्तिस्थानम् । की०, (शुद्धबोधप्रकाशम्) शुद्धबोधस्य निर्म्मलज्ञानस्य प्रकाशो यस्मात् तादृशम् । [केचित्] कतिपये [अतिसुधियः] अतिविद्वांसः [वैष्णवाः] विष्णुभक्ताः (परम्) उत्कृष्टम् (तत्) पूर्वोक्तस्थानम् (ब्रह्माभिधानम्) ब्रह्मसंज्ञकं स्थानमिति यावत् (लपन्ति) कथयन्ति । अन्ये (केचित्) कतिपये (सुकृतिनः) विद्वांसः (किमपि) अनिर्वचनीयम् एतत्पूर्वोक्तस्थानम् [हंसाख्यम्] हंसनामकं हंसस्थानमिति यावत् लपन्ति कथयन्ति । केचित् [मोक्षवर्त्मप्रकाशम्] मोक्षवर्त्म मुक्तिमार्गस्तत् प्रकाशयति उज्ज्वलयतीति तादृशम्, मुक्तिमार्गदर्शकं वदन्तीत्यर्थः ॥ निर्व्वाणाख्यशक्त्यन्तराले नैरन्तरं नित्यानन्दनामकं परमशक्तिपदं निर्म्मलम् स्वच्छमतिजनकम् शिवस्थानं विद्यते । वैष्णवास्तदेवस्थानं ब्रह्मपदं कतिपये धर्म्मिष्ठा मुक्तिमार्गदर्शकस्थानम्, अन्येसुकृतिनो हंसस्थानं निगदन्तीतिभावार्थः ॥ १० ॥

॥ भाषाटीका ॥

उक्त आज्ञाख्यचक्रसे ऊपर शंखिनी* नामकी नाडी के शिखरपर शून्यदेशस्थित अर्थात्

*शंखिनी नाड़ी मूलद्वारमें स्थितहै तहांसे सीधी ब्रह्माण्डतक चली गईहै, उसीके शिखर पर सहस्रदल वर्त्तमानहै ।

ब्रह्माण्डमें फैलाहुआ विसर्गनाम शक्तीके नीचें अत्यन्त सुन्दर प्रकाशमान पूर्णमासीके चन्द्र समान शुभ एक 'सहस्रदल' कमल है जो अधोमुखी + अर्थात् नीचे मुंह है। और प्रातःकालीन बाल रविकी किरणोंके समान अत्यन्त प्रकाशमान रक्तवर्ण केशर जिसमें शोभायमान होरहे हैं। फिर वर्णमालाके अकारादि पचासों अक्षर "अ" से "क्ष" तक इस कमलकी पत्तियों पर वर्त्तमान हैं अर्थात् इस कमलकी बीस-बीस पत्तियां एक-एक अक्षरसे ग्रथित हैं, फिर यह कमल नित्यानन्द स्वरूपही है ॥ १ ॥

उक्त सहस्रदलपद्मके बीच अमृतरसमय सुहावनी किरणोंसे सुशोभित निष्कलंक "पूर्णचन्द्र" दशोदिशाओंमें अपनी सुन्दर ज्योति फैलाताहुआ विलास कर रहा है। इसी चन्द्रमण्डलके मध्य विद्युतसमान दमकता हुआ त्रिकोण यन्त्र है, इस यन्त्रके बीच सब देवोंके गुरुदेव शून्यब्रह्मको अत्यन्त गोपनीय रूपसे चिन्ता करनी चाहीये ॥ २ ॥

उक्त शून्यब्रह्मको, जो अतिसूक्ष्म, परमानन्दकन्द, अत्यन्त श्रेष्ठ, सोलहोंकलासे सुशोभित, पूर्णचन्द्र सदृश प्रकाशमान है, अत्यन्त यत्नसे गोपनीय रखना चाहीये। फिर इसी स्थानमें "ख" अर्थात आकाश रूपी देव परमात्मा "परमशिव" नाम करके सिद्धोंमें परमप्रसिद्ध, सदा अमृतधाराकी वृष्टी करतेहुए, शुद्धबुद्धि योगियोंको आत्मज्ञान दान देतेहुए सर्वान्तरात्मा, शिवशक्तियोगानन्दरसमय, निवास करतेहैं, जो अज्ञानतारूपी अन्धकारको हंस अर्थात् सूर्य्यसमान नाशकरनेमें समर्थ हैं। फिर इसी स्थानमें सबके ईश्वर सकल सुखकारक अखिलानन्दमय "परमहँस" नाम भगवान् निवास करते हैं ॥ ३, ४ ॥

इसी शून्यस्थानको शैव शिवस्थान, वैष्णव विष्णुस्थान, अनेक भक्तजन हरिहरस्थान, देवी चरण सेवा करनेवाले शक्तिस्थान और अनेक मुनिगण प्रकृति पुरुषका स्थान वर्णन करते हैं अर्थात् इस स्थानको सब अपने इष्टदेवका स्थान जानते हैं। तात्पर्य्य यह, कि अपनी-अपनी इच्छानुसार सब उपासक अपने-अपने उपास्यको इसीस्थानमें ध्यान कर जगदीश्वरमें लय होजासकते हैं।

जो पुन्यात्मा प्राणी इस सहस्रदलके इस शून्यस्थानको अपने इष्टदेवका निवास जानकर निश्चय कर स्थिर चित्त हो उस पूर्णब्रह्म जगदीश्वरमें ध्यान लगा मग्न होवे, वह श्रेष्ठ योगी, स्वर्ग मर्त्य औ पाताल तीनों लोकोंमें कहींभी बद्ध नहीं होसकता अर्थात् फिर जन्म मरणके बन्धनमें नहीं आता, वरु सदा सृष्टि पालन और संहारादिमें ब्रह्मादि देवताओंके समान समर्थ होजाता है और आकाशमें गमन करनेकी शक्ति भी उसे प्राप्त होती है, अर्थात उसकी खेचरी मुद्रा भी सिद्ध हो

+ यह सहस्रदल और पूर्व कथन कियाहुआ चतुर्दल दोनों अधोमुखी अर्थात् नीचे मुंह खिलेहुए हैं। अन्य सब कमल ऊर्ध्वमुख अर्थात् ऊपर मुंह हैं।

नं० ७ शून्यचक्र (सहस्रदल पद्म) Brain.
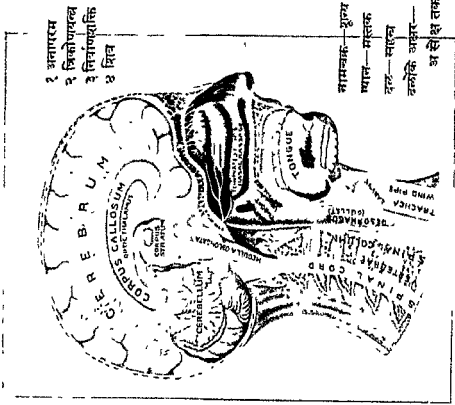
अनाटमीसे मस्तिष्कके २ भिन्न स्थान स्पष्टरूपसे दिखलाये जाते हैं।
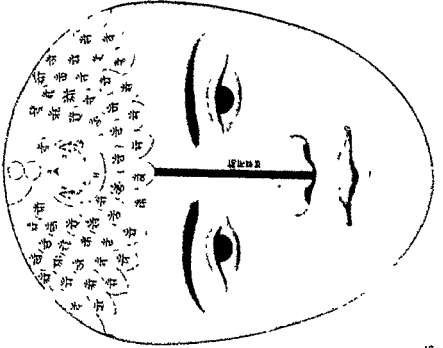
BHUTNATH PRESS CALCUTTA

जाती है और गद्यपद्य सहित स्वच्छ काव्य करनेमें प्रवीण होजाता है ॥ ५ ॥ ६ ॥

इसी स्थान अर्थात् त्रिकोणमें प्रातःकालीन बाल सूर्य्यवत् कलाँ ऐसी रक्तवर्ण विजलीसी चमकीली अत्यन्त निर्म्मल कमलनालके सूत्रके सौ भागमें एक भागके समान पतली, अत्यन्त श्रेष्ठा, नित्य प्रकाशमाना अधोमुखी परम आनन्दकी देने वाली पूर्णचन्द्रकी सोलहवीं कलाके समान सूक्ष्मा अमृतधारा धारणकिये "अना" नामकी शक्ति उदित होरही है ॥ ७ ॥

फिर उक्त "अना" नाम शक्तिके मध्य द्वादश सूर्य्यके समान प्रकाशमाना परात्परा अर्थात् अत्यन्त श्रेष्ठा, नित्यज्ञानकी देनेवाली भगवती एक केशके सहस्र अंशमें एक अंश समान अतिशय सूक्ष्मा, सब प्राणियोंकी इष्ट देवतारूप, षडैश्वर्य युक्त बालविधु समान कुटिलाकारा निर्वाण नामकी एक [कला] निवासकरती है ॥ ८ ॥

पूर्वोक्त [निर्व्वाणरूप] कलाके मध्य कोटि सूर्य्य समान प्रकाशमाना, तीनों भुवनकी रचना करनेवाली, केशाग्रके कोटि भागमें एक भागके समान अत्यन्त सूक्ष्मा अति 'गुह्या' अर्थात् गोपनीया, सततकाल प्रेमधारा धारण किये, सब प्राणियोंकी प्राणरूप, मुनियोंको आनन्द देनेवाली और नित्य तत्त्व ज्ञानकी प्राप्ती करानेवाली, "निर्व्वाण शक्ति" निवास करती है ॥९॥

उक्त "निर्व्वाणशक्ति" के मध्यभागमें निर्म्मल सनातन योगियोंको ध्यान द्वारा जानने योग्य, 'शुद्धज्ञानप्रकाशक' सर्वशक्तिमय, नित्यानन्द नामक परम शक्तियुक्त "शिवस्थान" अर्थात् 'तुरीयस्थान' है, इसी स्थान को कोई-कोई बुद्धिमान वैष्णव 'परमज्योतिस्थान' अर्थात् ब्रह्मस्थान, कोई हंसका स्थान और कोई-कोई पुण्यात्मा 'मोक्षद्वार' अर्थात् मोक्षका मार्ग बताते हैं ॥ १० ॥

यहां तक सातों कमलोंका वर्णन होचुका अब आगे कुण्डलिनीके उत्थापनका क्रम कथन करेंगे। साधकोंको चाहिये, कि (ॐ भुः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यं) इन सातों व्याहृतियोंसे सातों कमलोंका ध्यान करतेहुए सहस्रदलमें पहुंच कुम्भक कर अर्थात् मन अथवा प्राण* को रोक गायत्री मन्त्र (तत्सवितुर्वरेण्यम् ०) जपतेहुए अपने इष्टदेवमें मग्न हो जावें। जब फिर कुम्भकसे उतारना चाहैंतो (आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्मभूर्भुवः स्वरोम्) इस मंत्रसे मनोवृत्तिको अथवा प्राणको उतारलेवें। उतारनेके समय इष्टदेवके मस्तकसे चरण तकका ध्यान करें अथवा ऊपरसे नीचे कमलोंका ध्यान करते आवें, अथवा आप (जल) ज्योति (प्रकाश) अमृतरस, ब्रह्म, भूः, भुवः, स्वः, इनहीं सातोंका ध्यान कर ॐकारमें समाप्त करें ॥

॥ इति षट्चक्रनिरूपणचित्रम् समाप्तम् ॥

अथ कुलकुण्डलिन्युत्थापनक्रमः

—❀:❀—

हुंकारेणैव देवीं यमनियमसमाभ्यासशीलः सुशीलो, ज्ञात्वाश्रीनाथवक्त्रात्क्रममपि च महामोक्षवर्त्मप्रकाशम् ॥ ब्रह्मद्वारस्य मध्ये विरचयतुतरां शुद्धबुद्धिप्रभावो, भित्त्वा तल्लिंगरूपं पवनदहनयोराक्रमणैव तसाम् ॥१॥ भित्त्वा लिंगत्रयं तत्परमरसशिवे सूक्ष्मधाम्नि प्रदीप्ते, सा देवी शुद्धसत्ता तडिदिव विलसत्तन्तुरूपस्वरूपा ॥ ब्रह्माख्यायाः शिरायाः सकल सरसिजं प्राप्य देदीप्यते तत्, मोक्षानन्दस्वरूपं घटयति सहसा सूक्ष्मतालक्षणेन ॥ २ ॥ नीत्वा तां कुलकुण्डलीं नवरसां जीवेन सार्द्धं सुधीः, मोक्षे धामनि शुद्धपद्मसदने शैवे परे स्वामिनीम् ॥ ध्यायेदिष्टफलप्रदां भगवतीं चैतन्यरूपां परां, योगीशो गुरुपादपद्मयुगलालम्बी समाधौ युतः ॥ ३ लाक्षाभं परमामृतं परशिवात् पीत्वा ततः कुण्डली, पूर्णानन्द महोदयात् कुलपथान्मूले विशेत् सुन्दरी ॥तद्दिव्यामृतधारया स्थिरमतिः सन्तर्पयेद्दैवतं, योगी योग परम्पराविदितया ब्रह्माण्डभाण्डस्थितम् ॥४॥ज्ञात्वैतत्क्रममुत्तमं यतमना योगी समाधौ युतः, श्रीदीक्षागुरुपादपद्मयुगलामोदप्रवाहोदयात ॥ संसारे न जनिष्यते नहि कदा संक्षीयते संक्षये, पूर्णानन्दपरम्परा प्रमुदितः शान्तः सताम्भग्रणीः ॥५॥ श्लोऽधीते निशिसन्ध्ययोरथदिवा योगीस्वभावस्थितो, मोक्षज्ञान निदानं मेतममलं शुद्धंसुशुद्धं क्रमम्। श्रीमच्छ्री गुरुपादपद्मयुगलालम्बी यतान्तर्म्मना स्तस्यावश्यमभीष्टदैवतपदे चेतोनरी नृत्यते॥ ६॥

भाष्यम्

हूंकारेणेति—(सुशीलाः) सुसद्वृत्तः (यमनियमसमाभ्यासशीलः) यमनियमाद्यष्टांगयोगानुशीलनपरोयोगी (श्रीनाथवक्त्रात्) गुरुदेव मुखात् स्वयम्भूलिंगोपरिस्थितां कुण्डलिनीं (च) पुनः (क्र-

म्)उक्तषट्चक्राणां वेधनादिरीतिमपि (ज्ञात्वा) बुध्वा एतद्द्वयंविज्ञायेतियावत् (शुद्धबुद्धिप्रभावः) निर्म्मलज्ञानयुक्तः सन् (तत्) प्रसिद्धं लिंगरूपं स्वयम्भूलिंगम् (भित्त्वा) छित्त्वा अर्थात् कुण्डलिन्या विदार्य्य तन्मार्गेण (हूंकारेणैव) (हूं) इति शब्दोच्चारणेनैव तां कुण्डलिनीं (ब्रह्मद्वारस्य) मूलाधारपद्मस्य मध्ये (विरचयतुतराम्) प्रकर्षेण नयतु। तां की० (पवनदहनयोः) अनिलानलयोः (आक्रमेणैव) आक्रान्त्यैव (तसाम्)प्रबुद्धां त्यक्तशयनामित्यर्थः। तथाच गोरक्षसंहितायाम् (मुखेनाच्छाद्यतद्द्वारं सुप्ता परमेश्वरी। प्रबुद्धा वन्हियोगेन मनसा मरुतासह)। क्रमं की० (महामोक्षवर्त्मप्रकाशम्)महामोक्षवर्त्मनो निर्वाणमार्गस्य प्रकाशो यस्मात्तादृशम्॥ [यमनियमानुष्ठानपरः सुशीलो यतिजनो गुरुमुखात् महामुक्तिमार्गज्ञापकं कुण्डलन्युत्थापनक्रमम् षट्चक्राणांवेधनादिरीतिमपि विज्ञाय पवनानलयोराक्रान्त्या तसाम् अर्थात् त्यक्तशयनां कुण्डलिनीं हूंशब्दोच्चारणेनैव स्वयम्भूलिंगं विदार्य्य ब्रह्मद्वारस्यान्तर्नयतुतराम् ॥१॥

भित्त्वेति—(सा) प्रसिद्धा (देवी) कुलकुण्डलिनी (ब्रह्माख्यायाः शिरायाः) ब्रह्मनाड्याः सकाशात् (तत्) पूर्वोक्तं (लिंगत्रयम्) मूलाधारस्थं स्वयम्भूलिंगम् , हृत्पद्मस्थं बाणाख्यलिंगम्, आज्ञाचक्रकर्णिक.मध्यस्थमितराख्यलिंगमितिलिंगत्रयम् , (भित्त्वा) छित्त्वा (तत्) पूर्वोक्तं (सकलसरसिजम्) अखिलपद्मन् [प्राप्य] षट्पद्मकर्णिकान्तर्गतासतीत्यर्थः (प्रदीप्ते) प्रज्वलिते (परमरसशिवे) परमरसः परमानन्दमयः (शिवः) महादेवो यत्र तादृशे (सूक्ष्मधाम्नि) अत्यल्पस्थाने ब्रह्मरन्ध्रइत्यर्थः (देदीप्यते) अतिशयेन प्रज्वलति। सा देवी कीदृशी (शुद्धसत्ता) शुद्धा निर्मला सत्ता स्थितिर्यस्यास्तादृशी नित्येत्यर्थः। पुनः की०, (तड़िदिव) विद्युदिव (विलसत्तन्तुरूपस्वरूपा) विलसत् विलासं कुर्वत् शोभमानमित्यर्थः। तन्तुरू. सूत्राकारं स्वरूपं यस्यास्तादृशी विद्युदिव देदिप्यमानसूक्ष्मस्वरूपेत्यर्थः। सा कुण्डलिनी देवी (सूक्ष्मता लक्षणेनसह) सूक्ष्मताधर्मेण सह (मोक्षानन्दस्वरूपम्) परमानन्दस्वरूपं शिवमित्यर्थः (घटयति) प्राप्नोति। सा कुलकुण्डलिनी स्वयं सूक्ष्माभवति सूक्ष्मधामस्थं परमशिवमुपतिष्ठत इत्यर्थः॥ सा कुलकुण्डलिनी देवी स्वयं सूक्ष्मशरीरतां प्राप्य ब्रह्मनाडीद्वारा षट्पद्मकर्णिकारन्ध्रमार्गेण स्वयम्भूबाणाख्येतराख्यलिंगत्रयं भित्त्वा सूक्ष्मधाम्नि ब्रह्मरन्ध्रे सूक्ष्मरूप परमशिवेनसह संगता सती देदीप्यत इतिभावार्थः। २।

नीत्वेति— (सुधिः) प्राज्ञः (योगीशः) योगीश्रेष्ठोजनः (तां) प्रसिद्धां (कुलकुण्डलीं जीवेनसार्द्धं) जीवात्मनासह (मोक्षे) मोक्षदायके (धाम्नि) स्थाने (शुद्धपद्मसदने) सहस्रदलपद्मस्वरूपगृहे (नीत्वा) प्राप्य (इष्टफलप्रदाम्) अभिमतफलदात्रीं (पराम) श्रेष्ठाम् (चैतन्यरूपाम्) ज्ञानात्मिकाम् (भगवतीम्) षडैश्वर्ययुक्तां स्वामिनीम् सहस्रदलपद्माधिष्ठात्रीं महाकुण्डलिनीम् (ध्यायेत्) चिन्तयेत् । की० कुण्डलिनीम्(नवरसाम्) नूतनरसयुक्तां नवीनछवियुक्तामित्यर्थः। यद्वाशृंगारहास्यादिनवरसजनिकां, काव्यशक्तिदातृत्वात् । कीदृशे धामनि (शुद्धपद्मसदने) शुद्धपद्मं निर्म्मलसरसिजं सहस्रदलपद्ममितियावत् सदनं गृहं यस्य तादृशे सहस्रदलपद्मकर्णिकान्तरवर्तिनीत्यर्थः। की० (शैवे) शिवाश्रयीभूतस्थाने । की०, (परे) श्रेष्ठेः । की० योगीशः (गुरुपादपद्मयुगलालम्बी) गुरुदेवचरणकमलद्वयावलम्बनशीलः । की० (समाधौयुतः) ध्यानैकलीनः ॥ समाधिनिष्ठो विचक्षणो यतिवरस्तां कुलकुण्डलिनीं जीवेनसार्धं मुक्तिप्रदे परमशिवस्थाने सहस्रारे नीत्वा इष्टफलप्रदां चैतन्यरूपां भगवतीं महाकुण्डलिनीं चिन्तयेदिति भावार्थः॥ ३ ॥

लाक्षेति- ततस्तदनन्तरं (सुन्दरी) लावण्यमयी [कुण्डली] कुण्डलिनी [पूर्णानन्दमहोयात्] सम्पूर्णानन्दस्य महान् उदयो यस्मात् तादृशात् (परशिवात्) महेश्वरात् [लाक्षाभम्] रक्तवर्णं [परमामृतम्] उत्कृष्टसुधां पीत्वा (कुलपथात्) षट्चक्रान्तर्गतमार्गात् [मूले] मूलाधारपद्मे विशेत् प्रवेशं करोति । पुनर्मूलाधारपद्ममागच्छतीत्यर्थः । [तत] तदन्तरम् (योगी) योगाभ्यासी पुरुषः (स्थिरमतिः) निश्चलबुद्धिः सन् [दिव्यामृतधारया] उत्कृष्टसुधाप्रवाहेण परशिवाद्द्रवद्रसप्रवाहेणेत्यर्थः । [ब्रह्माण्ड भांडस्थिम्] संसारभाजनवर्ती [दैवतं] देवसमूहम् [सन्तर्पयेत्] प्रीणयेत् तृप्तियुक्तं कुर्य्यादित्यर्थः । अमृतधारया कथंभूतया [योगपरम्परया विदितया] योगश्रेण्या ज्ञातया ॥

परमसुन्दरी कुण्डलीनीदेवी सहस्रदलकमलान्तःस्थितात् परमानन्दहेतोः परमशिवात् प्रस्रवन्तीं लाक्षावल्लोहितां सुधां पीत्वा षट्चक्रकर्णिकारन्ध्रमार्गेण पुनर्मूलाधारपद्ममागच्छेत् तदा निश्चलबुद्धिः समाधिनिष्ठोजनः योगाभ्यासविदितया तदमृतधारया ब्रह्माण्डस्थितं देवसमूहं संतर्पयेदितिभावार्थः ॥ ४ ॥

ज्ञात्वैदिति — [यतमना] विषयान्तरनिवृत्तिचेता [योगी] योगाभ्यासीजनः [समाधौयुतः] ध्यानाशक्तः सन् (श्रीदीक्षागुर्विति) श्रीयुक्तो यो दीक्षागुरुः योगक्रियोपदेशकस्तस्य

नं० ८

षटचक्रमूर्त्तिः

१—सहस्रदल पद्म
२—द्विदल पद्म
३—षोडशदल पद्म
४—द्वादशदल पद्म
५—दशदल पद्म
६—षड्दल पद्म
७—चतुर्दल पद्म
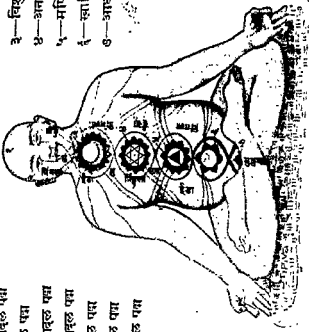
१—शून्य चक्र
२—आज्ञाख्य चक्र
३—विशुद्धाख्य चक्र
४—अनाहत चक्र
५—मणिपूरक चक्र
६—स्वाधिष्ठान चक्र
७—आधार चक्र

सिद्धासनम्
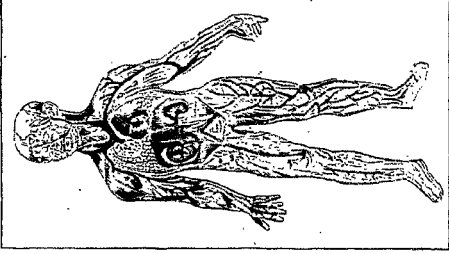
अनाटमीसे पूर्ण शरीरके चक्रों औ नाड़ियोंको स्पष्टकर देखलाया जाता है

महात्मनो यः पादपद्मयुगलामोदप्रवाहः चरणकमलद्वयनिषेवणजन्यहर्षधारा तस्य उदयात् प्रादुर्भावात् गुरुचरणानुग्रहादितिभावः, (एतत्) पूर्वोक्तम् (उत्तमम्) उत्कृष्टम् (क्रमं) षट्चक्रवेधनविधिम् (ज्ञात्वा) बुध्वा (संसारे न जनिष्यते) भवसागरे तस्य पुनर्जन्म न भवतीत्यर्थः । (कदा) कस्मिन्नपि (संक्षये) प्रलये (नहिसंक्षीयते) नैवक्षयमेति न नश्यतीत्यर्थः । सजनः (पूर्णानन्दपरम्पराप्रमुदितः) पूर्णानन्दश्रेण्या हर्षितः । (शान्तः) । स्थिरमतिः । (सतामग्रणीः) सतां सा धूनामग्रणीरग्रगण्यो भवतीतिशेषः ॥ ५ ॥

योऽधीतइति– (स्वभावस्थितः) शान्तचित्तः (श्रीमच्छ्रीगुरुपादपद्मयुगलालम्बी) श्रीयुतगुरुदेवपादपद्मद्वयनिविष्टचितः । (यतान्तर्मनाः) यतं विषयान्तरेभ्योनिवृत्तमन्तर्मनोयस्यतादृशः वशीकृतचित्त इत्यर्थः । (योगी) योगाभ्यासी (निशि) रात्रौ (सन्ध्ययोः) अहोरात्रसन्धियुग्मवेलायाम् (अथ दिवा दिने च (अमलम्) स्वच्छं शुद्धम् (सुशुद्धम्) संस्कृतं सर्वशास्त्रसम्मतम् (मोक्षज्ञाननिदानम्) तत्त्वज्ञानादिकारणम् (एतत्क्रमम्) कुण्डल्युत्थापनरीतिं (योऽधीते) यः पठति, (तस्य) जनस्य (चेतः) चित्तम् (अभिष्टदैवतपदे) इष्टदेवचरणारविन्दे (अवश्यम्) अतिशयेन (नरीनृत्यते) नटी नृत्यतीति दिक् ॥ ६ ॥

॥ भाषाटीका ॥

कुलकुण्डलिनी उत्थापन क्रम वर्णन करतेहैं, । जो योगाभ्यासी सुशील शुद्धज्ञानस्वरूप यम नियमादि अष्टांगयोगके साधनमें तत्पर है वह श्रीगुरुमहाराजके श्रीमुखद्वारा महामोक्षका मार्ग जो कुण्डलिनी जगानेकी रीति औ ऊपर कथन कियेहुए पट्चक्रोंके वेधनेकी रीति जानकर उक्त स्वयम्भूलिंगके ऊपर निवास करनेवाली कुलकुण्डलिनी देवीको वायु और अग्निसे तपायमान * करतेहुए अर्थात् सोयीहुई कुण्डलिनीको जगाकर उसके साढ़ेतीन आवेष्टनोंको सीधा करतेहुए और उक्त स्वयम्भूलिंगको वेधतेहुए अंकुशवीज जो (हूं) शब्द तिसके वारवार उच्चारण द्वारा उक्त कुण्डलिनीको ब्रह्मनाड़ी होकर मूलाधारपद्मके मध्य ब्रह्मद्वारके मुखमें लेजाताहै ॥ १ ॥

फिर यह कुण्डलिनी शुद्धसत्तास्वरूप अविनाशनी दामिनीके दमकते हुएसूत्र सम न अत्यन्त सूक्ष्मा औ चमकीली, लिंगत्रय अर्थात् मूलाधारपद्मस्थित 'स्वयंभूलिंग', हृदयपद्मस्थित 'वाणाख्यलिंग' और आज्ञाख्यचक्रस्थित 'इतराख्यलिंग' तीनों लिंगोंको वेधतीहुई औ षट्पद्म होतीहुई अर्थात् ब्रह्मनाड़ीद्वारा अति सूक्ष्मरूपसे षट्चक्रोंको वेधतीहुई और बिजुली समान चणमात्र उन पद्मोंपै अवस्थान करतीहुई ब्रह्मरन्ध्रमें प्राप्त हो विलास विशिष्ट अर्थात् शिवशक्ति संभोगरसयुक्त सूक्ष्म नाम शिवके संग शोभायमान होतीहै। अर्थात् अत्यन्त सूक्ष्मरूप परमशिवके संगमसे यह भी परमसूक्ष्मता को प्राप्त होतीहुई मोक्षमार्ग को जनातीहै ॥ २ ॥

'सुधी' अर्थात् ज्ञानवान योगीजन "श्रीगुरुपादपद्मवलम्बी" अर्थात श्रीगुरुके चरणारविन्दके सेव-नेवाले, समाधि कियाके यत्नमें तत्पर, नवशृंगारयुक्त अथवा नवों रसोंको प्रगटकरनेवाली कुण्डलि-नीको जीवात्माके साथलेकर मोक्ष देनेवाले निर्म्मल श्रेष्ठ सहस्त्रदलकमलमें परमशिवके समीप पहुं-चा सबको इष्टफलकी देनेवाली चैतन्यरुपा अतिश्रेष्ठा सहस्त्रदलपद्माधिष्ठात्री श्रीपरमेश्वरी महाकुण्ड-लिनी देवीको ध्यानकरतेहैं ॥ ३ ॥

फिर यह कुण्डलिनी उक्तप्रकार ब्रह्मरन्ध्रमें पहुंच परमानन्द स्वरुप परमशिवसे रक्तवर्ण अमृ-तको पानकर फिर उक्त षट्चक्र मार्गद्वारा मूलाधारमें लौटकर सुस्थिर अर्थात् गुप्तरुप होजातीहै, मानो शयन कर जातीहै। तत्पश्चत् स्थिरमति योगीजन परमशिवसे टपकतेहुए दिव्य ब्रह्माण्डस्थि-देवसमूहोंको इसी अमृतधरासे तृप्तकरतेहैं और सब देवोंको तृप्तकर आपभी तृप्त होतेहैं। यह अ-मृतधारा केवल योगी जनोंको योगाभ्यासही द्वारा जानने योग्यहै क्योंकि योगही क्रियाद्वारा इस अमृतको पानकर तृप्तहो तीनकालको जय करतेहैं ॥ ४ ॥

श्रीदीक्षागुरुके चरणकमलके प्रतापसे उत्तम इन्द्रियजित समाधि विषय अभिलाषित योगी जन इस उत्तम क्रमको अर्थत् कुण्डलिनी उत्थापन द्वारा षट्चक्रवेधविधिको जानकर अति आनन्दके सा-थ इस संसारके जन्म मरणसे छूटकर परब्रह्ममें प्रवेशकर अचलपदको प्राप्त होजातेहैं और उनक नाश किसीभी प्रलयकालमें नहीं होता और ऐसेप्राणी परमानन्द स्वरुप साधकजनोंमें अग्रणी अ-र्थात् श्रेष्ठ औ शन्तियुक्त होजातेहैं ॥ ५ ॥

'वशीकृतचित्त' अर्थात् वश करलियाहै अपना मन जिसने औ स्वभावस्थित अर्थात् दिव्य भाव विशिष्ट अपने आपमें स्थित योगी श्रीगुरुके युगल चरणकमलकी सेवामें रहनेवाले उत्तम मुक्तिदायक ज्ञानका आदिकारण शास्त्रोंके मनसे शुद्ध, फिर शोभनशील शोभायमान सर्ववादिसम्मत सर्व विद्वानोंके मतकी एक सम्मति जो उक्त 'उत्तम क्रम' उसे दिनरात और प्रातः सायम् पाठ क रेंगे उनकाचित्त अपने इष्टदेवता विषय अवश्य नित्य नृत्य करतारहेगा अर्थात् अभ्यास कर-ते-करते स्वयं इष्टदेवरुप होजावेंगे ॥ ६ ॥

षट्चक्रोंके ध्यान करते समय किन किन विषयोंके ध्यान करनेकी आवश्यकता है वे इस आलेख्यपत्रमें दिखलाये जाते हैं ॥

नामपद्म वा चक्र	स्थान	रंग	दलोंके अक्षर	तत्त्वोंके नाम	तत्व बीज	बीजका वाहन	देव	देव-शक्ति	अंगरेज़ी नाम
१- चतुर्दलपद्म (आधारचक्र)	योनि	रक्त	वँ शं षं सं	पृथ्वी	लँ	हस्ती	ब्रह्मा	डाकिनी	Pelvic plexus
२- षड्दलपद्म (स्वाधिष्ठानच०)	पेड़ू	सिंदूर	बं भं मं यँ रं लं	जल	वं	मकर	विष्णु	राकिनी	Hypogastric plexus
३-दशदलपद्म (मणिपूरकच०)	नाभि	नील	डं ढं णं तं थं दं धं नँ पँ फं	अग्नि	रं	मेढा	वृद्ध रुद्र	लाकिनी	Epigastric plexus
४-द्वादशदलपद्म (अनाहत च०)	हृदय	लाल	कँ खँ गँ घं ङं चं छँ जं झं ञं टं ठँ	वायु	यं	मृगा	ईशान	काकिनी	Cardiac plexus
५-षोडशदलपद्म (विशुद्धाख्यच०)	कण्ठ	धूम्र	अं आं इं ईं उँ ऊं ऋँ ॠं लृँ ॡं एं ऐं ओं औं अँ अः	आकाश	हं	हस्ती	पंचवक्त्र	शाकिनी	Carotid plexus
६. द्विदलपद्म (आज्ञाख्यच०)	भ्रूमध्य	श्वेत	हँ क्षं	महत्तत्व	ॐ	विन्दु	अर्द्धांग	हाकिनी	Medulla— Oblongata
७-सहस्रदलपद्म (शून्यच०)	मस्तक	शुभ्र	अं से-क्षंतकवीस-२ पत्तियों पर एक-एक अक्षर	तत्त्वातीत	(:)	नाद	परब्रह्म	महाशक्ति	Brain

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५	१८	षट्दलपद्म	षड्दलपद्म
२३	२	विघुतत्समूह	विघुत्समूह
३१	१७	विद्युत्विलास	विद्युद्विलास
३२	५	झटति	झटिति
३५	१८	परिवृत्तम्	परिवृतम्
५१	१०	मास्तेति	मास्तइति
५६	१५	झटति	झटिति
५६	१६	मुनिन्द्रा	मुनीन्द्रा
६१	२	साक्षीभूत	साक्षिभूत
६५	१५	मुनीन्द्रां	मुनीन्द्रा
६५	१५	प्यन्ये	ऽप्यन्ये

॥ इति ॥

विषयोंका सूचीपत्र

पुस्तक मिलनेका पता—

सेक्रेटरी त्रिकुटीमहल चन्दवारा
मुज़फ्फ़रपुर

अथवा

मैनेजर श्री हंसाश्रम-यंत्रालय
अलवर
राजपूताना